बी. डी. पाण्डे स्मृति-व्याख्यान

(मार्च 2010 में शुरू वार्षिक-कार्यक्रम के अंतर्गत मार्च 2019 तक आयोजित हुए दस व्याख्यानों का संकलन)

उत्तराखण्ड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान अल्मोड़ा

प्रस्तावना

संस्थान की गवर्निंग बॉडी ने 2010 में स्व. बी. डी. पाण्डे की स्मृति में एक व्याख्यानमाला आयोजित करने का निश्चय किया। इस विचार को तत्कालीन अध्यक्ष श्री अरुण सिंह का मार्गदर्शन और भरपूर प्रोत्साहन मिला। सुश्री मानिनी चटर्जी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि यह कार्यक्रम अल्मोड़ा में आयोजित होना चाहिये। श्री देब मुखर्जी, श्री सुमन दुबे और प्रो. के. एस. वल्दिया ने विशिष्ट वक्ताओं को अल्मोड़ा आमंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. बी. के. जोशी, डॉ. हरीश चन्द्र पाण्डे और श्री रंजन जोशी ने उल्लेखनीय सहयोग देने के साथ ही व्याख्यान-कार्यक्रमों की अध्यक्षता करने का हमारा अनुरोध स्वीकार किया। व्याख्यानमाला के उक्त विचार का स्व. बी. डी. पाण्डे जी के परिवारजनों- अरविन्द, मृणाल, रत्ना और अनुराधा ने भी हार्दिक रूप से स्वागत किया तथा कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भागीदारी की।

हम अपने को बहुत भाग्यशाली मानते हैं कि देश-विदेश में ख्याति प्राप्त व्यक्तियों ने स्मृति-व्याख्यान देने का हमारा निवेदन स्वीकार किया। हम सभी वक्ताओं का बहुत आभार व्यक्त करते हैं। उन्होंने लम्बी यात्रा करके अल्मोड़ा आने-जाने के कष्ट और हमारे सादगीपूर्ण आतिथ्य को भी सहर्ष स्वीकार किया। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अल्मोड़ा में आम बोलचाल की भाषा हिन्दी है हमने वक्ताओं से व्याख्यान हिन्दी में देने का अनुरोध किया था। दस में से आठ व्याख्यान हिन्दी में दिये गये।

इस व्याख्यानमाला को सफल बनाने में विविधतापूर्ण स्रोतागणों, खासकर अल्मोड़ा नगर के निवासियों का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने न सिर्फ व्याख्यानों को शांति व धैर्यपूर्वक सुना अपितु वक्ताओं के साथ रोचक और सार्थक संवाद करके इस कार्यक्रम को सफल बनाया। अल्मोड़ा नगर के अलावा दूरस्थ स्थानों से लम्बी यात्रायें करके भी अनेक अतिथिगण इस कार्यक्रम में हर साल आते रहे हैं. राजेश्वर सुशीला दयाल चैरिटेबल ट्रस्ट के पदाधिकारियों सहित इन सभी अतिथियों का हम आभार व्यक्त करते हैं.

व्याख्यानमाला के लिये आवश्यक इंतजामों को करने के लिये मैं उत्तराखण्ड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान के सभी सहयोगियों को धन्यवाद देना चाहता हूँ।

यह व्याख्यानमाला 2010 में शुरू हुई थी। अब तक आयोजित हुए दस स्मृति-व्याख्यानों को लिपिबद्ध और संकलित करने का काम संस्थान के सहयोगी कमल जोशी ने किया। ई-बुक का रूप वाग्मी ने दिया है. मैं दोनों को बधाई और धन्यवाद देना चाहता हूँ.

जून 2020 **डॉ. ललित पाण्डे**

विषय-सूची

1	**स्व. बी. डी. पाण्डे**	**परिचय**	i
2	**स्मृति-व्याख्यान के वक्ता**	**संक्षिप्त परिचय**	ii
3	**डॉ. कर्ण सिंह** (मा. संसद-सदस्य एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री)	भगवद्गीता का सन्देश	1
4	**श्री एम. हामिद अंसारी** (मा. उप-राष्ट्रपति, भारत)	-	15
5	**श्री गोपालकृष्ण गांधी** (प्रशासक, कूटनीतिज्ञ एवं पूर्व राज्यपाल)	भारत, हिंदुस्तान और इंडिया	28
6	**सर मार्क टली** (बीबीसी के पूर्व भारत संवाददाता)	-	44
7	**श्री जावेद अख्तर** (कवि, गीतकार एवं पटकथा लेखक)	समाज के आईने में सिनेमा और सिनेमा के आईने में आज का समाज	56
8	**प्रो. सी.एन.आर. राव** ('भारत-रत्न' से सम्मानित वैज्ञानिक)	-	77
9	**डॉ. सुनीता नारायण** (पर्यावरणविद)	पर्यावरण संरक्षण और विकास	97
10	**एडमिरल देवेन्द्र कुमार जोशी** (भारत के पूर्व नौसेनाध्यक्ष)	राष्ट्रीय सुरक्षा और उच्च स्तर पर रक्षा नीतियों का संचालन	111
11	**श्री मुक्तेश पंत** (यम चाइना के उपाध्यक्ष और पूर्व सीईओ)	भारत और चीन में बुनियादी ढाँचे का विकास	126
12	**श्री रामचंद्र गुहा** (प्रसिद्ध इतिहासकार एवं लेखक)	Why Gandhi Still Matters?	151

स्व. बी. डी. पाण्डे

चन्द्र दत्त पाण्डे और भुवनेश्वरी देवी की पाँच सन्तानों में सबसे छोटे भैरब दत्त पाण्डे का जन्म 17 मार्च, 1917 को हल्द्वानी (नैनीताल जनपद) में हुआ। पिता भारतीय डाक विभाग में उच्च पद पर कार्यरत थे। माता का बचपन में देहान्त हो गया था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मेरठ, लखनऊ और दिल्ली में हुई। दिल्ली के मॉडर्न स्कूल से आठवीं पास करने के उपरान्त पिताजी ने आगे की पढ़ाई के लिये अल्मोड़ा भेज दिया। उन दिनों गवर्नमेन्ट इंटर कॉलेज अल्मोड़ा की बड़ी प्रतिष्ठा थी। उन्होंने 1931 में हाईस्कूल की परीक्षा में कुमाऊँ में प्रथम आने के साथ ही उत्तर प्रदेश की योग्यता-सूची में भी उच्च स्थान प्राप्त किया। इंटरमीडिएट परीक्षा गवर्नमेन्ट इंटर कॉलेज इलाहाबाद से पास की। इसमें भी प्रथम श्रेणी और योग्यता-सूची में जगह मिली।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1935 में बी.एससी की डिग्री हासिल करने के उपरान्त आगे पढ़ने विलायत चले गये। उन्होंने 1936 से 1939 तक कैंब्रिज विश्वविद्यालय में पढ़ाई की।

बी. डी. पाण्डे ने 1938 में लन्दन से आई.सी.एस. की परीक्षा पास की। कुमाऊँ व गढ़वाल अंचलों से आई.सी.एस. में सफलता पाने वाले वे पहले व्यक्ति थे। इस इम्तिहान में सफल होना तब बहुत मुश्किल था क्योंकि हर साल केवल 50 लोग ही चुने जाते थे। उन्हें बिहार कैडर मिला और पहली नियुक्ति गया जिले में असिस्टेंट मजिस्ट्रेट पद पर हुई। बिहार-शासन में उन्होंने 1939 से 1960 तक वित्त-सचिव और विकास आयुक्त सहित अनेक महत्वपूर्ण पदों पर सेवा की। बिहार में गंभीर खाद्यान्न-संकट होने पर 1951 में उन्हें बिहार के वित्त सचिव के अतिरिक्त खाद्य आयुक्त की ज़िम्मेदारी भी दी गयी। बिहार में पुनः खाद्यान्न-संकट की स्थिति आने पर 1967 में चीफ सेक्रेटरी और कमिश्नर जनरल का दायित्व दिया गया।

बी. डी. पाण्डे को आई.सी.एस. अधिकारी के तौर पर ब्रिटिश-शासित भारत और स्वतंत्र भारत, दोनों में सेवा का मौक़ा मिला। वे 1960 में केन्द्र सरकार में प्रति-नियुक्ति पर आये। भारतीय जीवन बीमा निगम के अध्यक्ष, योजना आयोग के सचिव, वित्त सचिव और कैबिनेट सचिव सहित अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। कैबिनेट सचिव के पद पर इतना लम्बा कार्यकाल (2 नवम्बर 1972 से 31 मार्च 1977 तक) आज तक किसी अन्य का नहीं रहा है।

सेवानिवृत्ति के बाद 1980 में बी.डी. पाण्डे रेलवे सुधार आयोग के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। 12 सितम्बर 1981 को उन्हें पश्चिम बंगाल का राज्यपाल बनाया गया। इसके बाद 10 अक्टूबर 1983 से 3 जुलाई 1984 तक वे पंजाब के राज्यपाल रहे। राज्यपाल के पद पर नियुक्त होने वाले वे उत्तराखण्ड के पहले व्यक्ति थे।

सेवानिवृत्ति के उपरांत भैरब दत्त पाण्डे पत्नी विमला पाण्डे के साथ 1977 में अपने पहाड़ वापस लौट आये। 1984 से जीवन-पर्यन्त वे अल्मोड़ा में स्थित अपने पुराने पैत्रक घर में रहे। 1984 में उत्तराखण्ड सेवा निधि तथा 1999 में उत्तराखण्ड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान के अध्यक्ष बने। इन संस्थाओं के माध्यम से उन्होंने लगभग दो दशकों तक अपने अनुभव, प्रशासनिक क्षमता और समय का सदुपयोग उत्तराखण्ड के ग्रामीण समुदायों की शिक्षा और विकास के लिये किया।

भारत के राष्ट्रपति द्वारा 2000 में उन्हें ‘पद्म-विभूषण’ से सम्मानित किया गया। कुमाऊँ विश्वविद्यालय ने 2006 में ‘डी.लिट्’ की मानद उपाधि प्रदान की।

अपने जीवन के 90 वर्ष पूरे करने पर 2007 में उन्होंने सभी सार्वजनिक पदों से त्यागपत्र दे दिया। 2 अप्रैल, 2009 को अल्मोड़ा के पैत्रक घर में उन्होंने अंतिम साँस ली। पत्नी विमला जी का 2006 में हृदयाघात से देहान्त हो गया था। उनके ज्येष्ठ पुत्र अरविन्द (आई. ए. एस., भारतीय इस्पात प्राधिकरण के पूर्व अध्यक्ष और पुत्रवधू मृणाल (पद्मश्री, प्रसार भारती की पूर्व अध्यक्ष) दिल्ली में रहते हैं। पुत्री रत्ना मंगला सुदर्शन (भारतीय सामाजिक अध्ययन न्यास नई दिल्ली की पूर्व निदेशक) भी दिल्ली में रहती हैं। कनिष्ठ पुत्र ललित (पद्मश्री) और पुत्रवधू अनुराधा अल्मोड़ा में रहते हैं और उत्तराखण्ड सेवानिधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान के साथ जुड़े हैं।

***

वक्ताओं का परिचय

1. डॉ. कर्ण सिंह : 9 मार्च 1931 को जम्मू और कश्मीर के महाराजा हरि सिंह और महारानी तारा देवी के उत्तराधिकारी (युवराज) के रूप में जन्मे डॉ॰ कर्ण सिंह ने अठारह वर्ष की ही उम्र में राजनीतिक जीवन में प्रवेश कर लिया था। वर्ष 1949 में प्रधानमन्त्री पं॰ जवाहरलाल नेहरू के हस्तक्षेप पर उनके पिता ने उन्हें रीजेंट नियुक्त कर दिया। वे संसद के दोनों सदनों के सदस्य, केन्द्रीय मंत्री, राज्यपाल और अमेरिका में भारत के राजदूत रहे हैं।भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में अपनी गहन अन्तर्दृष्टि औरपश्चिमी साहित्य व सभ्यता की विस्तृत जानकारी के कारण भारत और विदेशों में एक विशिष्ट विचारक और नेता के रूप में जाने जाते हैं।
2. श्री एम. हामिद अंसारी: जन्म 1 अप्रैल 1937 को कलकत्ता में हुआ। सेंट ज़ेवियर कॉलेज कलकत्ता से बी.ए. ऑनर्स और कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. (राजनीति विज्ञान) किया। 1961 में भारतीय विदेश सेवा में शामिल हुए और एक राजनयिक के तौर पर 38 वर्षों के करियर में ऑस्ट्रेलिया, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान और सऊदी अरब में भारतीय राजदूत रहे। भारत के उप-राष्ट्रपति का कार्यकाल 11 अगस्त 2007 से 10 अगस्त 2017 तक रहा।
3. श्री गोपालकृष्ण गांधी: देवदास और लक्ष्मी गांधी के पुत्र तथा महात्मा गांधी के पौत्र गोपालकृष्ण गांधी का जन्म 22 अप्रैल 1946 को दिल्ली में हुआ। भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य रहे गोपालकृष्ण गांधी ने अन्य प्रशासनिक और कूटनीतिक पदों के साथ भारत के राष्ट्रपति के सचिव के रूप में और दक्षिण अफ्रीका और श्रीलंका में भारत के उच्चायुक्त के रूप में सेवा की। 2004 से 2009 तक पश्चिम बंगाल के राज्यपाल रहे।

4. सर मार्क टली: 24 अक्टूबर 1935 को कोलकाता में जन्मे मार्क टली बीबीसी के नई दिल्ली स्थित ब्यूरो के पूर्व अध्यक्ष हैं। जुलाई 1994 में इस्तीफे से पूर्व 30 वर्ष की अवधि तक बीबीसी के लिए कार्य किया तथा 20 वर्ष तक ब्यूरो-प्रमुख रहे। अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने भारत-पाकिस्तान युद्ध, भोपाल गैस त्रासदी, ऑपरेशन ब्लू स्टार और उसके बाद इंदिरा गांधी की हत्या तथा सिख विरोधी दंगे, राजीव गांधी की हत्या और बाबरी

मस्जिद विध्वंस सहित दक्षिण एशिया की सभी प्रमुख घटनाओं को कवर किया। बीबीसी से सेवानिवृत्ति के उपरांत वे नई दिल्ली से एक स्वतंत्र पत्रकार और प्रसारक के रूप में कार्य कर रहे हैं। ब्रिटिश सरकार द्वारा 'नाईट' की उपाधि तथा भारत सरकार से पद्मश्री और पद्म-भूषण सम्मान मिला। भारत पर आधारित कई पुस्तकें लिखीं जिनमें इंडिया इन स्लो मोशन (सह-लेखक गिलियन राईट), नो फुल स्टॉप्स इन इंडिया, दी हार्ट ऑफ इंडिया, डिवाइड एंड क्विट, लास्ट चिल्ड्रेन ऑफ दी राज, फ्रॉम राज टू राजीव-40 ईयर्स ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस, इंडिया- 50 इयर्स ऑफ इंडिपेंडेंस, इंडियाज़ अनेंडिंग जर्नी तथा अमृतसर: मिसेस गाँधीज लास्ट बैटल शामिल हैं।

5. श्री जावेद अख्तर: कवि, गीतकार और हिन्दी सिनेमा के पटकथाकार के रूप में विख्यात जावेद अख्तर का जन्म 17 जनवरी 1945 को ग्वालियर में हुआ। पिता जाँ निसार अख्तर जाने-माने शायर थे और माँ साफिया शिक्षिका व लेखिका थी। शिक्षा लखनऊ, अलीगढ़ और भोपाल शहरों में हुई। 1964 में मुम्बई आये जहाँ विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए सफलता के शिखरों को छुआ। हिन्दी सिनेमा को उन्होंने अनेक दमदार पटकथाएँ और यादगार गीत दिये हैं। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार, फिल्म-फेयर अवार्ड और आई.आई.एफ.ए. अवार्ड सहित अनेक पुरस्कार तथा पद्म-श्री और पद्म-भूषण सम्मान मिल चुके हैं। 2012 में राज्य सभा के सदस्य नामित हुए।

6. प्रो. सी.एन.आर. राव : चिंतामणि नागेश रामचन्द्र राव का जन्म 30 जून 1934 को बंगलुरु में हुआ। मैसूर विश्वविद्यालय से बी.एससी., काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम.एससी., Purdue विश्वविद्यालय (अमेरिका) से पीएच.डी. और मैसूर विश्वविद्यालय से डी. एससी. की डिग्री हासिल की। ऑक्सफ़ोर्ड, कैंब्रिज, कैलिफ़ोर्निया, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस बंगलुरु, आई.आई.टी. कानपुर सहित विश्व-प्रसिद्ध विद्यालयों/संस्थानों में महत्वपूर्ण अकादमिक पदों पर रहे हैं। आपके 1,600 शोध-पत्र और 48 पुस्तकें प्रकाशित हैं। दुनियाभर के 51 विश्वविद्यालयों ने उन्हें मानद डॉक्टरेट उपाधि प्रदान की हैं। प्रधानमंत्री की वैज्ञानिक सलाहकार परिषद् के दो बार अध्यक्ष रहे प्रो. राव को राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार व सम्मान मिले हैं। 2014 में भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत-रत्न' से सम्मानित किये गये।

7. डॉ. सुनीता नारायण: जन्म 1961 में नई दिल्ली में हुआ। शिक्षा दिल्ली विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय और लुसाने विश्वविद्यालय (स्विट्ज़रलैंड)में हुई।

1980 के दशक में प्रसिद्ध पर्यावरणविद अनिल अग्रवाल के सहयोगी के रूप में कार्य शुरू किया। 'स्टेट ऑफ़ इंडिया'स एनवायरनमेंट' रिपोर्ट तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। 'सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट' की महानिदेशक और इसके द्वारा प्रकाशित 'डाउन टु अर्थ' पत्रिका की संपादक हैं। देश और दुनिया में पर्यावरण के ज्वलन्त मुद्दों को उठाया है। 2005 में भारत के प्रधानमंत्री के निर्देश पर गठित 'टाइगर टास्क-फ़ोर्स' की अध्यक्ष और जलवायु-परिवर्तन पर प्रधानमंत्री की सलाहकार परिषद् तथा प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित नेशनल गंगा रिवर बेसिन ऑथोरिटी की सदस्य रहीं। 'पद्मश्री' और 'वर्ल्ड वाटर प्राइज' से सम्मानित हैं।

8. एडमिरल देवेन्द्र कुमार जोशी, **पीवीएसएम, एवीएसएम, वाईएसएम, एनएम, वीएसएम,एडीसी (अ.प्रा.)** : जन्म 4 जुलाई 1954 को अल्मोड़ा में हुआ। 1974 में भारतीय नौसेना की एग्जीक्यूटिव ब्रांच में कमीशन प्राप्त करने के उपरांत 40 साल के सेवाकाल में अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहे। अगस्त 2012 में भारत के 21वें नौसेनाध्यक्ष नियुक्त हुए और 26 फ़रवरी 2014 तक इस पद पर रहे। आई.एन.एस. सिन्धुरत्न और इससे पहले की अन्य दुर्घटनाओं की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए नौसेनाध्यक्ष के पद से त्यागपत्र देकर सार्वजनिक जीवन में उच्च-नैतिकता का उदाहरण रखा। भारतीय नौसेना में सराहनीय सेवा के लिये परम विशिष्ट सेवा पदक, अति विशिष्ट सेवा पदक, विशिष्ट सेवा पदक, युद्ध सेवा पदक और नौसेना पदक से सम्मानित किया गया। 8 अक्टूबर 2017 को अंडमान और निकोबार के उप-राज्यपाल नियुक्त हुए।

9. श्री मुक्तेश पंत : मुक्तेश (मिकी) का जन्म 1 सितम्बर 1954 को अल्मोड़ा में हुआ। माँ गौरा पंत 'शिवानी' हिन्दी की सुप्रसिद्ध साहित्यकार-कथाकार थीं और पिता शुक देव पंत शिक्षा विभाग में अधिकारी थे। स्कूली शिक्षा नैनीताल में हुई। आई.आई.टी. कानपुर से केमिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई की। हिन्दुस्तान लीवर में मैनेजमेंट ट्रेनी के तौर पर करियर की शुरुआत करके वैश्विक-स्तर पर एक के बाद एक, निरंतर नई ऊंचाइयों को छुआ, जिनमें उल्लेखनीय हैं- रीबोक इंटरनेशनल के ग्लोबल चीफ मार्केटिंग ऑफीसर, टैको बेल इंटरनेशनल के प्रेसीडेंट, यम रेस्टोरेंट्स इंटरनेशनल और के.एफ.सी. के चीफ एग्जीक्यूटिव ऑफीसर, यम चाइना के उपाध्यक्ष और वरिष्ठ सलाहकार। भारत, यू.के., यू.एस.ए. और चीन में रह कर कार्य किया है और विश्व के सभी हिस्सों में व्यवसाय की देखरेख की है। दो बार विज्ञापन क्षेत्र का सर्वोच्च सम्मान 'गोल्डन लायन अवार्ड (फ्रांस)।

आई.आई.टी. कानपुर द्वारा 'Distinguished Alumni Award' प्रदान किया गया। वर्तमान में डलास (अमेरिका) में रहते हैं।

10. श्री रामचन्द्र गुहा: जन्म 29 अप्रैल1958 को देहरादून में पैदा हुए रामचंद्र गुहा की स्कूली शिक्षा कैंब्रियन हॉल तथा द दून स्कूल में हुई। दिल्ली के सेंट स्टीफ़न कॉलेज से बी.ए., दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स से एम.ए. और आई.आई.एम. कोलकाता से फेलोशिप प्रोग्राम(पीएच.डी. के समकक्ष) किया। भारत, यूरोप और उत्तरी अमेरिका के विभिन्न विश्वविद्यालयों में शिक्षण किया। 2011-12 में लन्दन स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स में 'फिलिप रोमन चेयर ऑफ़ इंटरनेशनल अफेयर्स एंड हिस्ट्री' नियुक्त हुए। न्यू इंडिया फाउंडेशन के मैनेजिंग ट्रस्टी हैं। प्रमुख पुस्तकें हैं- Unquiet Woods, A Corner of Foreign Field- The Indian History of a British Sport, India After Gandhi, Gandhi Before India, Gandhi- The Years that Changed the World. इनकी किताबों का 20 से अधिक भाषाओँ में अनुवाद हो चुका है। भारत के अंग्रेज़ी व हिन्दी अख़बारों के लिये कॉलम लिखते रहे हैं। भारतीय क्रिकेट कण्ट्रोल बोर्ड में सुधारों के लिये सुप्रीम कोर्ट द्वारा 2017 में गठित 4 सदस्यों की प्रशासक समिति में सदस्य मनोनीत हुए। 'पद्म-भूषण', साहित्य अकादमी पुरस्कार, फुकुओका एशियन कल्चर प्राइज सहित देश-विदेश में अनेक सम्मान और पुरस्कार मिले हैं।

***

प्रथम बी डी पाण्डे स्मृति व्याख्यान- 21 मार्च, 2010

डॉ कर्ण सिंह

“भगवद्गीता का सन्देश”

आज की सभा के अध्यक्ष डॉ बी.के. जोशी जी, डॉ ललित पाण्डे, यहाँ उपस्थित सांस्कृतिक नगरी अल्मोड़ा के प्रतिष्ठित नागरिकगण, पाण्डे परिवार के सदस्यगण, उपस्थित महानुभाव भाइयों और बहनों,

मैं स्वयं हिमालय-पुत्र हूँ इसलिये हिमालय में आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। इस हिमालय का वर्णन महाकवि कालिदास ने 'कुमार सम्भव' के प्रथम श्लोक में ही किया है:

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज:।

पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थित: पृथिव्या इव मानदण्ड: ॥

इस देवतात्मा हिमालय के दर्शन जितने सुन्दर यहाँ अल्मोड़ा से हुआ करते थे इतने अच्छे कहीं और से नहीं होते थे। दुर्भाग्य से प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि हिमालय-दर्शन भी बहुत कठिनाई से ही होता है। यह हमारा दुर्भाग्य है।

अल्मोड़ा एक बहुत ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साधु-संतों की नगरी है। यहाँ बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति रहे हैं। यहाँ बहुत प्रतिष्ठित लोग हुए हैं जिन्होंने भारतवर्ष में अपना नाम कमाया है। स्वामी विवेकानन्द, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गांधीजी आदि महापुरुष यहाँ आये। पंडित जवाहरलाल नेहरु जिन्हें हम अपना राजनितिक गुरु मानते हैं, वे यहाँ जेल में रहे थे। इस प्रकार से यहाँ बहुत सारे लोग आये और बड़ी प्रतिष्ठा के लोग यहाँ रहे। श्रीकृष्ण प्रेम ने यहाँ मिरतोला में अपना आश्रम बनाया था और श्रीमाधव आशीष भी वहाँ रहते थे। मैं 1957

से लेकर हर साल गुप्त रूप से अल्मोड़ा आता था और यहाँ से गुजरते हुए मिरतोला चला जाता था। यहाँ 'कुन्दन हाउस' में डॉ. बोसी सेन और बोदीं (गर्टू डोमिसन सेन) रहते थे। वहाँ भी कई बार मैंने रातें गुज़ारी हैं। इस तरह अल्मोड़ा के साथ मेरे बहुत सुखद सम्बन्ध रहे हैं। मैं सर्वप्रथम तो अल्मोड़ा के नागरिकों को नमन करता हूँ कि आप इतने अच्छे स्थान में रहते हैं। आपको बधाई है।

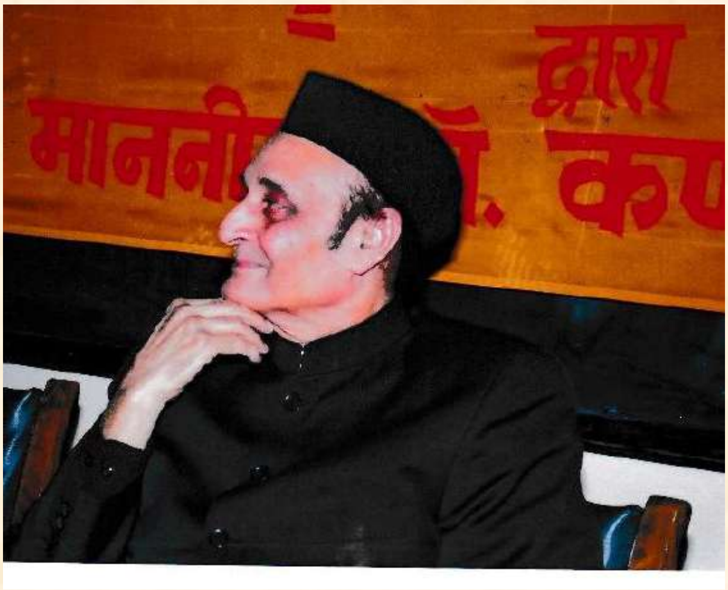

आज का अवसर भी महत्वपूर्ण है। ललित ने जब मुझे बी. डी. पाण्डे स्मारक भाषण देने के लिये यहाँ आमंत्रित किया तो मैंने सहर्ष स्वीकार किया क्योंकि मैं जिन दस वर्ष इन्दिराजी के मंत्रिमंडल में रहा उनमें से पांच वर्ष, 1972 से 1977 तक, कैबिनेट सेक्रेटरी पाण्डेजी रहे। वे बड़े महत्वपूर्ण वर्ष थे। उन्हीं वर्षों के दौरान बांग्लादेश का भी युद्ध हुआ, इमरजेंसी की भी घटना हुई, सारे अनेक-अनेक अद्भुत प्रकरण हुए। लेकिन पाण्डेजी की जो राय थी और जिस प्रकार से वे कैबिनेट सेक्रेटरी होते हुए हमारी कैबिनेट का सारा कार्य चलाते थे वह बहुत ही प्रशंसनीय है। उनकी राय बड़ी संजीदा, बड़ी मुद्दविराना होती थी। उसके बाद वे पहले पश्चिम बंगाल के राज्यपाल बने जहाँ राजभवन में मैं रहा। पहली बार ललितजी से वहीं भेंट हुई। उसके बाद वे पंजाब के राज्यपाल रहे और उसके बाद यहाँ, अल्मोड़ा आकर उन्होंने कार्य किया। उत्तराखण्ड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान में भी वे रहे। यह शायद उन्हीं की प्रेरणा से बनी। यह बहुत अच्छा कार्य कर रही है। मुझे यहाँ आकर जानकारी प्राप्त हुई कि आप लोग ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये क्या-क्या कार्य कर रहे हैं। ये बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि शहरों में तो बहुत चहल-पहल होती है लेकिन वास्तव में ग्रामीण क्षेत्र और महिला वर्ग में काम करना बड़ा अद्भुत और महत्वपूर्ण है। मैं ललितजी, उनके सब

साथियों और उनकी पत्नी, जो बाहर बैठी हैं, यहाँ हैं ही नहीं। पता नहीं कहाँ हैं! अपना स्थान उन्होंने 'अतिथि देवो भव:' के रूप में रिक्त करके आप सबको बैठाया, सबको बधाई देता हूँ। आप बड़ा अच्छा कार्य कर रहे हैं और पाण्डेजी की स्मृति में भी आप कार्य कर रहे हैं। इस कार्य को आप करते रहिये। यह बहुत पुण्य, समाज-सुधार और देश-सेवा का कार्य है। मृणालजी यहाँ बैठी हुई हैं। ये भी दिल्ली में बहुत प्रसिद्ध भूमिका निभा रही हैं। मेरा और इनका 'लोकसभा दूरदर्शन' पर एक घंटे का संवाद चला था। आपने सुना होगा। ये कुछ बातें हैं जिन्हें मैं विषय पर आने के पहले कह दूँ।

विषय मुझे दिया गया है 'भगवद्‌गीता का सन्देश'। इससे पहले कि मैं विषय पर आऊँ श्रीकृष्ण जी को ध्यान करना आवश्यक है।

कस्तूरी तिलकं ललाटपटले वक्षस्थले कौस्तुभम्।

नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणु: करे कंकणम्।

सर्वांगे हरिचन्दनम् सुललितं कंठे च मुक्तावली।

गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूड़ामणि:।।

तप्तकान्चन गौरांगी राधे वृन्दावनेश्वरी।

वृषभानुसुते देवी प्रणमामि हरिप्रिये।।

और मैं स्वयं शिवजी का भक्त हूँ।

न यावदुमानाथ पादारविन्दम, भजन्तिः लोके परे वा नराणाम्।

न तावत्सुखं शांति सन्तापनाशं, प्रसीद प्रभो सर्वभूतादिवासम्।

न जानामि योगं जपं नैव पूजाम, नतोहम सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम्।

जराजन्मदु: खौघतातप्य मानम्, प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो।।

अध्यक्ष जी और महानुभावो,

आज हम एक बहुत उथल-पुथल के युग में रह रहे हैं। मैं देश-विदेश की यात्रा करता हूँ और यह स्पष्ट है कि विज्ञान ने हमें बहुत रत्न दिये हैं। इसमें कोई शक नहीं। बड़ी प्रगति हुई है देश-विदेश में और हमारे देश में भी। लेकिन आपको स्मरण होगा कि जब समुद्र-मंथन हुआ था तो रत्नों के साथ-साथ एक गरल, भयंकर विष भी निकला था और शंकर भगवान ने अगर उस विष को अपने गले में नहीं समाया होता तो यह सृष्टि समाप्त हो गयी होती। मुझे कई बार लगता है कि आज एक मानवीय चेतना का समुद्र-मंथन हो रहा है। उसमें रत्न भी

बहुत उभर रहे हैं लेकिन उसमें विष भी उभर रहा है। अनेक प्रकार के विष उभर रहे हैं। आप देख रहे हैं कि किस प्रकार हिंसा बढ़ती जा रही है, किस प्रकार कट्टरतावाद के रूप में एक भयंकर लहू की होली खेली जा रही है और किस प्रकार के भयंकर अणु अस्त्र हैं। एक-एक अणु अस्त्र आज एक हज़ार हिरोशिमा बम के बराबर है और हजारों ऐसे अस्त्र आज हमारी इस छोटी सी पृथ्वी के ऊपर हैं। इसलिये विष भी है और रत्न भी हैं।

ऐसी परिस्थितियों में हम अपनी संस्कृति कि ओर देखते हैं। इसलिये नहीं कि पीछे जायें। पीछे नहीं जा सकते। लोग कहते हैं कि पुराने ज़माने में ऐसा होता था, वैसा होता था। होता होगा लेकिन उसका आज के लिये कोई महत्त्व नहीं है। हमारा शास्त्र वही महत्वपूर्ण होता है जो आज और कल, जो आने वाला कल है, उसमें हमारी सहायता करे। केवल एक स्वर्ण-युग की याद न दिलाये लेकिन आज हमें क्या प्राप्त हो सकता है...हमारी इतनी समृद्ध परंपरा है- वेद हैं, अरण्यक हैं, ब्राह्मण हैं, उपनिषद् हैं। उपनिषद् को मैं सर्वोपरि मानता हूँ। जितना ज्ञान उपनिषद् में है उतना किसी भी विश्व-शास्त्र में नहीं है। उसके बाद पुराण हैं, इतिहास है, रामायण है, महाभारत है, बहुत सारे अनेक-अनेक शास्त्र हैं। लेकिन एक शास्त्र है, छोटा सा (छोटा इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि केवल सात सौ श्लोक हैं, जैसे वेदों में तो हजारों हैं) जिसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जैसे रात को अगर आप देख सकें तो जो ध्रुव तारा है वह सबसे बड़ा तारा नहीं है लेकिन एक प्रकार से उसका प्रकाश सबसे अधिक है। तो हमारे शास्त्रों में 'भगवद्गीता' का विशेष महत्त्व है। आदि शंकराचार्य ने एक स्थान पर लिखा है-

भगवद्गीता किंचिध्दीता, गंगाजल लवकणिका पीता।

सकृदपि येन मुरारि समर्चा, क्रियते तस्य यमेन न चर्चा।।

कि 'भगवद्गीता' का थोड़ा सा भी ज्ञान हो तो वह बहुत बड़े भय से हमें बचाता है। और 'गीता' स्वयं कहती है-

नेहाभिक्रमनाशोअस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

कि कोई विरोधी शक्ति इसके आगे खड़ी नहीं हो सकती। इसका थोड़ा सा भी धर्म एक बहुत बड़े भय से हमें बचाता है। आपने देखा होगा कि जो भी बड़े-बड़े हमारे आचार्य हुए- वल्लभाचार्य हुए, माधवाचार्य हुए, रामानुजाचार्य हुए, चाहे हमारे युग में लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द, गांधीजी, विनोबा जी- सबको 'गीता' के ऊपर अपना भाष्य लिखना पड़ा। कोई भी संत अगर उभरा तो प्रस्थान-त्रयी (हमारे वेदांत के तीन स्तम्भ हैं। उपनिषद् श्रुति प्रस्थान है, गीता स्मृति प्रस्थान है और जो ब्रहम-सूत्र है वह तर्क-प्रस्थान है) के ऊपर उनको टिप्पणियाँ

लिखनी पड़ीं। गीता जो कि सबसे संक्षिप्त शास्त्र है, इन सब महानुभावो ने गीता के ऊपर अपनी-अपनी टिप्पणी लिखी है। इसलिये यह बड़ा कठिन हो जाता है कि अगर 'भगवद्गीता' के सन्देश को अभिव्यक्त करना हो तो हम किसकी विचारधारा को लें।

सबसे पहले मैं आपके सामने चार मुद्दे रखना चाहता हूँ कि गीता का इतना महत्त्व क्यों है।

पहला मुद्दा यह है कि गीता एक संघर्ष का शास्त्र है और आज हम एक संघर्षमय परिस्थिति में अपने को पाते हैं। उपनिषद् का वातावरण बिल्कुल ही भिन्न था। वहाँ शांत वातावरण में गुरु-शिष्य बैठते हैं, परस्पर वाद-संवाद होता है, प्रश्नोत्तरी होती है। हमारा सारा शास्त्र, उपनिषद् भी, प्रश्नोत्तरी के ऊपर निर्भर है। गीता भी प्रश्नोत्तरी है लेकिन गीता का वातावरण आप देखिये। वहाँ सेनायें एक-दूसरे के सामने खड़ी हैं, शंख बजना शुरू हो गए हैं और प्रक्षेपास्त्र आरंभ होने वाले हैं। ऐसी संघर्षमय परिस्थिति में गीता का सन्देश हमारे सामने आता है। मुझे लगता है कि आज का मानव अपने आप को संघर्षमय परिस्थिति में पाता है। इसलिये संघर्षशास्त्र उसके लिये बड़ा महत्त्व रखता है। जब कृष्ण कहते हैं, **"तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः"**, युद्ध के लिये तैयार हो जाओ तो यह केवल भौतिक युद्ध नहीं है, केवल कौरवों और पाण्डवों का युद्ध नहीं है। यह युद्ध हमारे भीतर चल रहा है। याद रखिये कुरुक्षेत्र केवल हरियाणा में एक मैदान नहीं है। कुरुक्षेत्र हमारे, आपके, सबके बीच है जहाँ आसुरी और दैवी शक्तियों का परस्पर युद्ध चल रहा है। ऐसी परिस्थिति में श्रीकृष्ण कहते हैं, **"तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः"** (37, अध्याय 2)। मुझे लगता है कि यह पहला कारण है कि गीता हमारे हृदय को स्पर्श करती है क्योंकि हमारी परिस्थिति... आज हम शांत परिस्थिति में नहीं हैं। आप दुनिया में कहीं भी चले जाइये, संघर्ष ही संघर्ष है।

दूसरी बात, मुझे लगती है, गीता इसलिये महत्वपूर्ण है कि गीता में गुरु का विलक्षण स्वरूप है। हमारे हरेक शास्त्र में गुरु का महत्त्व है-

अखण्डमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥ (श्री गुरुगीता)

तो गुरु का बड़ा महत्त्व है। हर उपनिषद में आप देखिये गुरु है लेकिन भगवद्गीता में गुरु स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। बहुत बड़े-बड़े गुरु उपनिषद् में हुए हैं- याज्ञवल्क्य हुए हैं, जनक हुए हैं, अंगिरस हुए हैं, श्वेताश्वतर हुए हैं लेकिन गीता के जो गुरु हैं वह भगवान स्वयं, भगवान श्रीकृष्ण हैं। उनके अपने ही स्वरूप को देखिये, एक प्रकार से देखा जाये तो उनको परमब्रह्म मानते हैं-

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

एक स्वरूप में आप देखिये तो विशाल रूप-दर्शन हैं- विराट रूप। लेकिन गीता में महत्त्व यह है कि वे सारथी बन कर आये हैं। आम तौर पर आप देखेंगे कि जो रथी होता है वह प्रमुख होता है और सारथी उसके अधीन होता है। लेकिन गीता में स्वयं श्रीकृष्ण सारथी बन कर आये हैं, अर्जुन के मित्र के रूप में आये हैं। इसलिये बड़ा महत्त्व है। ये केवल कहीं अदृश्य ऊपर से देखे हुए ऐसी ही कोई देववाणी नहीं है। ये बिल्कुल हमारे साथ, हमारे संघर्ष के रथ

में हमारे साथ बैठे हुए हैं और इसलिये यह दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा है। यही कारण है कि गीता में गुरु का विलक्षण स्वरूप है, श्रीकृष्ण स्वयं गीता में हैं।

तीसरी बात, जिससे गीता इतनी महत्वपूर्ण है, वह है गुरु-शिष्य का परस्पर सम्बन्ध। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बड़ा कोमल सम्बन्ध रहता है लेकिन एक श्लोक गीता में है जो बहुत ही अद्भुत है। अर्जुन को जब विराट स्वरूप दर्शन हो जाता है तब वे साष्टांग प्रणाम करते हैं और कहते हैं-

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं

प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः

प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ (44, अध्याय 11)

देखिये, वे कैसी अद्भुत बात कहते हैं। आपने मुझे विराट- स्वरूप दर्शन दिये। मैं आपके चरणों में नतमस्तक होता हूँ और आपसे किस प्रकार का सम्बन्ध मैं चाहता हूँ- पितेव पुत्रस्य, जैसा पिता का पुत्र के साथ होता है। पुत्र कहते हैं प्रिय होते हैं, हालाँकि पुत्रियाँ भी उतनी ही प्रिय होती हैं, कभी ज्यादा ही होती हैं। लेकिन पुत्र को माना जाता है कि पुत्र बहुत... लेकिन पिता-पुत्र का सम्बन्ध भी एक पारिवारिक परिपेक्ष्य में बंधा हुआ है। उससे बढ़ कर- सखेव सख्युः, सखा भाव है, मित्र-भाव है। कृष्ण और सुदामा मित्र हो सकते हैं। राजा और रंक मित्र हो सकते हैं। मित्रता में वर्ण, वर्ग या राशि का कोई भेद नहीं है। लेकिन उससे भी बढ़ कर वह चाहते हैं **“प्रिय: प्रियायार्हसि”**- जैसे कि प्रिय और प्रियतम का सम्बन्ध है। देखिये, तीन सम्बन्ध मिले हुए हैं- पिता और पुत्र का, मित्र और सखा का तथा प्रिय और

प्रियतम का। तीनों सम्बन्ध मिले हुए कृष्ण और अर्जुन का सम्बन्ध है। कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है! किसी शास्त्र में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध मैंने नहीं देखा है और यह कारण है कि गीता हमारे हृदय को स्पर्श करती है। इतना घनिष्ठ सम्बन्ध कृष्ण और अर्जुन का है! वैसे मैं तो कोई ख़ास अर्जुन को चाहता नहीं क्योंकि मेरा नाम कर्ण है। लेकिन मैं अर्जुन को एक प्रतीक मान रहा हूँ, एक साधक के रूप में। अगर हम एक भक्त के रूप में अपने आप को डालें, चाहे नाम कुछ भी हो- कर्ण हो, अर्जुन हो, तो उसका सम्बन्ध देखिये। कैसा अद्भुत सम्बन्ध भगवान् के साथ बना हुआ है!

तो गीता, पहले मैंने बताया कि संघर्ष का शास्त्र है। हम संघर्षमय परिस्थिति में हैं। दूसरा आपको बताया कि गीता के गुरु का एक विलक्षण स्वरुप श्रीकृष्ण का है। तीसरा यह कि गीता में गुरु और शिष्य का अद्भुत सम्बन्ध है। और चौथा यह कि गीता के सन्देश की एक सार्वभौमिक व्यावहारिकता है। गीता किसी वर्ग विशेष, धर्म विशेष या जाति विशेष के लिए नहीं है। गीता में भगवान स्वयं कहते हैं-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ (11, अध्याय 4)

जो भी मुझे, और जब वे मुझे कहते हैं तो केवल वसुदेव के पुत्र वासुदेव के रूप में नहीं बोल रहे हैं। वह भगवान के स्वरुप, आप कोई भी स्वरुप मान लीजिये, चाहे दृश्य हो या अदृश्य हो, उनके साथ जो सम्बन्ध है... वे कहते हैं कि मेरे साथ जो जिस तरह आयेगा मैं उसके लिए उसी तरीके से प्रकट होऊँगा-

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।। (21, अध्याय 7)

जो भी श्रद्धा रखे... आप किसी भी धर्म के हों, आप किसी भी वर्ण या वर्ग के हों, अगर श्रद्धा के साथ आप भगवान को चाहेंगे तो आपकी श्रद्धा को मैं सुदृढ़ करूँगा। कितनी बड़ी बात कह दी है! यह केवल हिन्दुओं के लिये नहीं है। इसीलिये जब मैं विदेश जाता हूँ तो देखता हूँ कि गीता सर्व-धर्मों के लिये बहुत लोकप्रिय हो गयी है क्योंकि उसमें कोई तंगदिली नहीं है। हमारी संस्कृति में भी यही है- **"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"।** सच्चाई एक है, उसे अभिव्यक्त करने के अलग-अलग मार्ग हो सकते हैं। इसलिये ये जो बात है, ये गीता में हमें प्राप्त है। तो इन चार कारणों से मैं मानता हूँ कि गीता इतनी महत्वपूर्ण है।

अब गीता का सन्देश क्या है? उसके बारे में बहुत सारे ऋषि-मुनियों ने बहुत कुछ लिखा है। मैं केवल चार मुद्दे आपके सामने रखना चाहता हूँ। पहला तो गीता हमारे लिये हमारे कर्म की व्याख्या करती है कि कर्म क्या करना चाहिये। देखिये, कर्म बड़ा कठिन होता है- **"गहना कर्मणो गतिः"**, गीता में कहा गया है कि कर्म का मार्ग बहुत कठिन है।

हमें किस समय क्या करना चाहिये? चाहे हम छात्र हैं, चाहे हम समाज-सेवक हैं, चाहे हम सरकारी मुलाजिम हैं- जहाँ भी हम हों, हमें करना क्या है? गीता कर्मयोग की व्याख्या अद्भुत रूप से करती है और मुझे लगता है कि वह व्याख्या हम एक श्लोक में प्राप्त करते हैं जिसमें गीता कहती है-

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यचर्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (46, अध्याय 18)

कि जो शक्ति सारे ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत है, उपनिषद् कहता है- **"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत"।** उस शक्ति की अगर हम अपने कार्य से सेवा करें, उसकी साधना करें, **"सिद्धिं विन्दति मानवः"**, मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है। देखिये, उन्होंने क्या कहा। सूची तो बनी नहीं है कि इस समय आप ये कीजिये, उस समय आप वो कीजिये। उन्होंने यह कह दिया कि जो भी आप कर्म करें अपने इष्ट देव के चरणों में उसे अर्पित कर दीजिये। तब आप कभी ग़लत कर्म नहीं करेंगे क्योंकि ज्योंही ग़लत कर्म करने लगोगे आपको लगेगा कि ओ हो! ये तो मैं उनको अर्पित नहीं कर सकता। तो कर्मयोग का यह मतलब नहीं है कि जो

भी कर्म है वह कर्म-योग है। कर्म वह होता है जो भगवत प्रेरणा से और भगवान के चरणों में अर्पित किया जाय। मैं शिव का भक्त हूँ-

“यत-यत कर्म करोमि तत तद अखिलं शंभो तवाराधनम”

जो भी मैं करूँगा शिवजी के चरणों में उसको अर्पित करूँगा। इस भाषण को भी। इसलिये कर्मयोग की जो व्याख्या गीता में की गयी ही वह बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि कुछ लोगों का यह विचार होता है कि वेदांत एक प्रकार से केवल ऋषि-मुनियों के लिये है या केवल सन्यासियों के लिये है। ऐसी बात नहीं है। ये गृहस्थों के लिये भी है। गीता में स्वयं कृष्ण ने कहा है जनक आदि ने कर्मयोग से ही सिद्‌धि प्राप्त की। इसलिये गीता का पहला सन्देश कर्मयोग का सन्देश है कि आप कर्म करो, डट कर कर्म करो लेकिन ऐसा कर्म करो जिसे आप अपने इष्ट के चरणों में समर्पित कर सको।

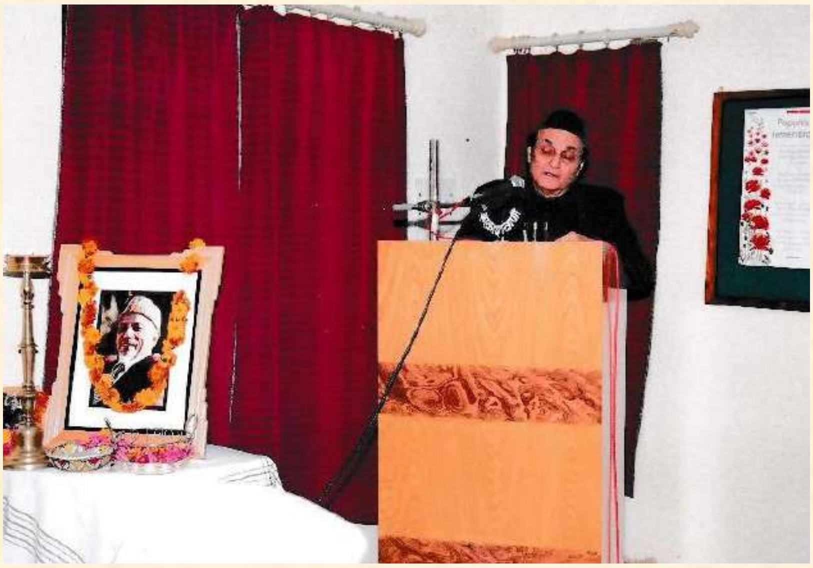

गीता का दूसरा सन्देश है एक सम्पूर्ण योग का। देखिये, हमारी संस्कृति में चार प्रमुख मार्ग बताये गये हैं, हजारों उप-मार्ग हैं, लेकिन चार मार्ग हैं। एक तो ज्ञानयोग है उपनिषद् का, सत्-असत् विवेचन का। दूसरा भक्तियोग है। जब तक हमारे ह्रदय के पटल नहीं खुलेंगे, भक्ति नहीं होगी, तब तक योग पूरा नहीं होगा। अगर ज्ञानयोग मस्तिष्क का योग है तो भक्तियोग ह्रदय का योग है, कर्मयोग बाहु का योग है और राजयोग हमारे अन्दर जो शक्तियाँ, छिपी हुई शक्तियाँ हैं, उनको उजागर करने का योग है। चाहे आप प्राणायाम कहिये, कुण्डलिनी कहिये, जो मर्ज़ी हो उसे कहिये। हमारे भीतर की शक्तियाँ निहित हैं, गुप्त रूप से हैं। इसलिये ये चार योग प्रमुख माने गये हैं। गीता एक ऐसा शास्त्र है, इसलिये अरविन्द ने अपनी टिप्पणी में इसका बहुत महत्त्व बताया है कि यह एक इंटीग्रल योग जिसे

कहते हैं। इसमें ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और राजयोग- चारों योगों का एक ही शास्त्र में सम्मिश्रण करके एक सम्पूर्ण योग हमारे सामने उपस्थित किया है। यह गीता का दूसरा सन्देश है। अध्यक्षजी, मेरी विचारधारा यह है कि आज के युग में हमको चारों योगों की आवश्यकता है। घोर कलियुग है इसलिये एक योग से काम नहीं चलेगा। हरेक व्यक्ति को कुछ ज्ञानी भी होना है (आप अल्मोड़ा निवासी तो बहुत ज्ञानी हैं। माने हुए ज्ञानी हैं आप), कुछ भक्तियोग भी करना होगा, कुछ कर्मयोग भी करना होगा और कुछ राजयोग भी करना होगा। चारों योगों को सम्पूर्ण रूप में जब तक आप अपने दैनिक जीवन में इकट्ठा नहीं करेंगे, तब तक आज के युग में एक मार्ग के ऊपर आगे बढ़ना बहुत कठिन होगा। देखिये, हमारे व्यक्तित्व के चार अंग हैं- मस्तिष्क है, हृदय है, हमारा शरीर है और हमारे भीतर छिपी शक्तियाँ हैं। गीता हमें सिखाती है कि आप केवल एक मार्ग या विचारधारा से नहीं बल्कि चारों को इकट्ठा करके चलेंगे तभी आप आगे चलेंगे। यह गीता का दूसरा सन्देश है।

गीता का तीसरा सन्देश है सम्पूर्ण आश्वासन। श्रीकृष्ण आश्वासन देते हैं। एक तो उन्होंने एक प्रकार से मानव जाति को आश्वासन दिया है जो बड़ा प्रसिद्ध है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ (7,8 अध्याय 4)

अर्जुन को वह ख़ास तौर पर कहते हैं- न मे भक्त: प्रणश्यति। लेकिन इस विषय में मुझे एक बात कहनी है जो शायद आपने पहले न सुनी हो। मुझे लगता है कि आज हमारे मंत्री (मंत्रियों के बारे में जितना कम कहा जाये उतना अच्छा है) अगर संसद में कोई आश्वासन देते हैं अध्यक्षजी, तो कहा जाता है कि आपने कौन सा आश्वासन दिया इस पर एक कमेटी बनी हुई है। श्री कृष्ण ने इतना बड़ा आश्वासन दिया हुआ है! हमें उनको बाँध कर रखना पड़ेगा। कहते तो हैं **"यदा-यदा हि धर्मस्य"** परन्तु यहाँ पर मुझे ग़ालिब का एक शेर याद आ रहा है-

हमने माना कि तगाफुल न करोगे
लेकिन ख़ाक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक।

अब वे कब तक अपनी बांसुरी बजाते रहेंगे? यहाँ हम सब नष्ट होते जा रहे हैं। इसीलिए कृष्ण बड़े टेढ़े हैं। देखिये, भगवान शंकर तो सीधे हैं -प्रसन्न हो जायें तो प्रसन्न हैं

और नाराज हो जायें तो भस्म। लेकिन भगवान कृष्ण खड़े भी टेढ़े होते हैं, वे सीधे खड़े भी नहीं होते! वे बड़े चालाक हैं इसलिये हमें उन्हें बाँध कर रखना है। वे हमें जो आश्वासन देते हैं उनको बाँध कर रखना है। श्री अरविन्द ने लिखा है कि अगर यहाँ से सच्चे दिल से हमारी चेतना उभरे तो उनको बाँधा जा सकता है। इसलिये तीसरा सन्देश यह है कि उन्होंने आश्वासन तो दिया मगर उस आश्वासन पर वे खरे उतरेंगे कि नहीं यह हम पर निर्भर है। अध्यक्ष जी, मैं यह मानता हूँ कि अगर हमें भगवान की आवश्यकता है तो भगवान् को भी हमारी आवश्यकता है। नहीं तो कृष्ण के हाथ में सुदर्शन-चक्र था। चला देते और समाप्त कर देते युद्ध को। क्यों पीछे पड़े रहे अर्जुन के कि उठो, भाई, उठो- **"तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय"**। मैंने पहले ही मार रखे हैं सारों को। उठो, भगवान का वास्ता है। खड़े हो जाओ। क्यों? क्योंकि यह जो दैवीय नक्शा है वह तब तक पूरा नहीं होगा जब तक मानवीय चेतना उसे नहीं मिलेगी। यह बात जो मैंने कही उस पर ज़रा विचार कीजिये। हम कोई ख़ाक-धूल नहीं हैं कि यहाँ से हवा चले तो यहाँ उड़ जायें, वहाँ से चले तो वहाँ उड़ जायें। हमारी चेतना की नियति हमारे अन्दर देवत्व का एक प्रकाश है-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। (61, अध्याय 18)

हमारे अन्दर इतनी शक्ति है कि जब तक हम सहयोग नहीं देंगे तब तक यह कार्य कृष्ण से भी पूरा नहीं हो सकता। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है गीता में, बहुत स्पष्ट है। नहीं तो, हमें शक होता है कि क्यों अर्जुन के पीछे पड़े रहे। उनको मानवीय चेतना की आवश्यकता थी।

अंत में, गीता का चौथा सन्देश बताऊँ। पहला, मैंने बताया कर्म की व्याख्या, दूसरा एक सम्पूर्ण योग (चारों योगों का सम्मिश्रण), तीसरा एक सम्पूर्ण आश्वासन और अंत में सम्पूर्ण समर्पण। अंत में, जब सारी गीता समाप्त हो जाती है, जब सारे प्रश्नोत्तर हो जाते हैं

तो अंत में कृष्ण स्वयं श्लोक बोलते हैं। प्रश्न के उत्तर में नहीं, अपनी तरफ से। क्या कहते हैं वे, अंत में-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (66, अध्याय 18)

अंत में, कहते हैं, सब धर्मों को छोड़ दो। **"धर्मधार्यतीति धर्म:"**, जो धारण करता है। कुछ लोग यह समझते हैं कि उनका धर्म उनको धारण करेगा। कुछ लोग समझते हैं कि राजनीति उनको धारण करेगी, कुछ लोग समझते हैं कि उनकी विद्वत्ता उनको धारण करेगी। अंत में, ये कोई चीज़ धारण करने वाली नहीं है। "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"। मेरी शरण में आओ। जब वह मेरी कहते हैं, मैं फिर कहूँगा कि वह केवल कृष्ण नहीं बल्कि दैवीय शक्ति के प्रतीक के रूप में बोल रहे हैं। **"अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"**। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त करूँगा। **'मा शुच:'**- ये जो शब्द है कि डरो नहीं, मुझे लगता है कि सारी गीता का सार इसमें है। आज हम सब भयभीत हैं। कोई वृद्धावस्था से डरता है, कोई बीमारी से डरता है,कोई मृत्यु से डरता है, कोई किसी अन्य चीज़ से डरता है (**म्रत्युन्जय महादेव त्राहिमाम शरणागतं। जन्म, मृत्यु, जरा, रोग पीड़ितम् कर्मबन्धने**)। अंत में गीता कहती है कि अगर तुम मेरी शरण में आओगे तो डरने कि कोई आवश्यकता नहीं, भगवान शंकर भी **"निखिलभयहरणं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं"**- सब भय को हरने वाले हैं। इसलिये भय को छोड़ कर अगर हम दैविक शक्ति के चरणों में जायें तो तभी हमारा जीवन सफल हो सकता है। मैं तो ये कहूँगा कि आज भी कृष्ण की बाँसुरी की आवाज़ हमारे कानों में गूँज सकती है। आज भी कृष्ण की बाँसुरी की आवाज़ हम सुन सकते हैं। लेकिन काम, क्रोध, लोभ और मोह के कोलाहल में हमें समय कहाँ है सुनने का? एकान्त कहाँ है सुनने का? हमारे मस्तिष्क में एक हलचल मची रहती है। अगर हम आज भी ध्यान करें और अपने अन्दर जो शक्ति है उसे उजागर करने का प्रयत्न करें तो आज भी कृष्ण की बाँसुरी सुनाई देगी। आज भी गीता का सन्देश सुनाई देगा। मैं यह कहूँगा कि हमें अंतिम समय तक रुकना नहीं है। न जाने अंतिम समय मैं कहाँ होऊँ? आईसीयू में होऊँ, कहाँ होऊँ? हम बोल सकें, न बोल सकें! इसलिये मैं अपना संक्षिप्त भाषण एक और श्लोक से समाप्त करूँगा जिसमें हम कृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि आज ही हमारी चेतना को अपनी चेतना में ले लीजिये क्योंकि अंतिम समय न जाने हम बोल सकें, न बोल सकें, न जाने क्या परिस्थिति हो! आज ही कृपा कीजिये-

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपंजरान्ते, अद्यैव मे विशतु मानसराजहंस:।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तै:, कंठावरोधनविधौ स्मरणम् कुतस्ते॥

***

द्‌वितीय बी डी पाण्डे स्मृति व्याख्यान- 26 मार्च, 2011

श्री एम. हामिद अंसारी

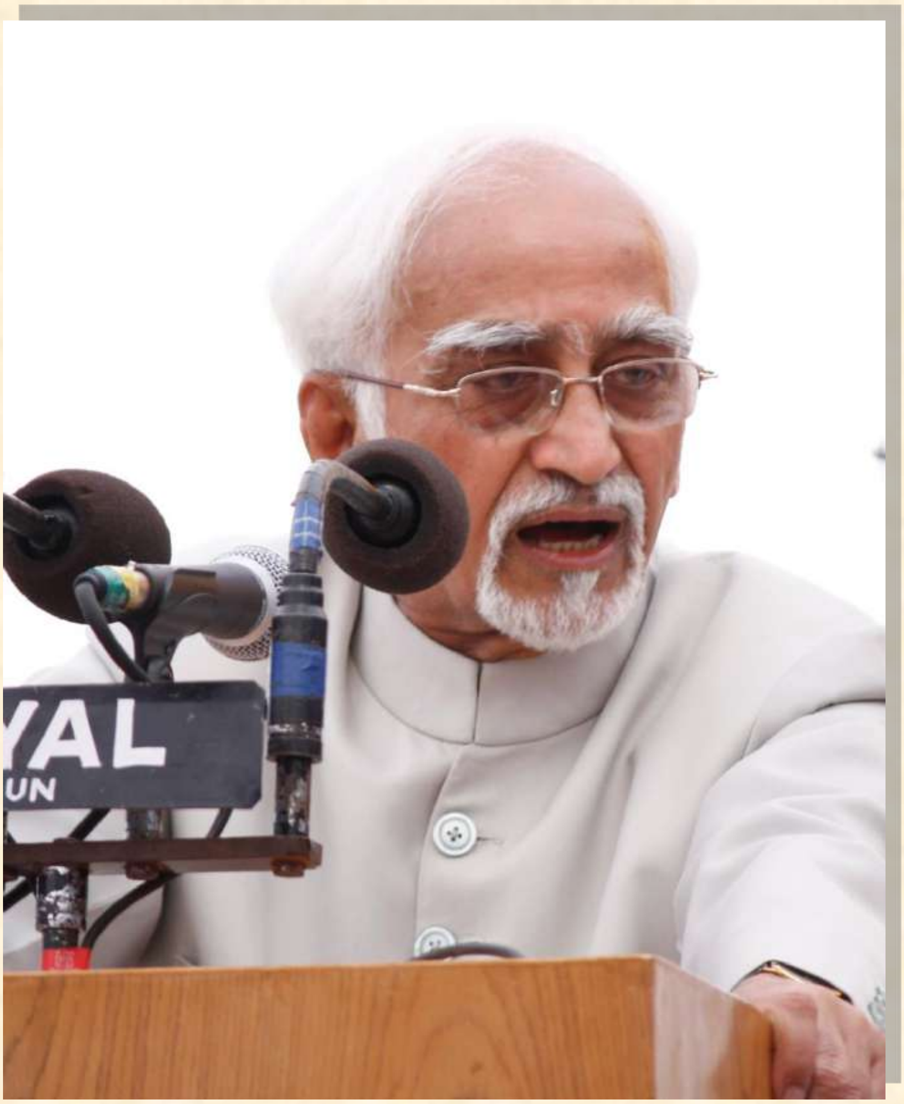

मार्ग्रेट अल्वा जी, बंशीधर भगत जी, अरुण सिंह जी, ललित पाण्डे जी, बहुत से पुराने दोस्त जो मेरे सामने बैठे हैं, देवियों और सज्जनों,

सरकारी हिसाब से मैं पहली बार अल्मोड़ा आया हूँ। मगर आने से पहले और एक नागरिक के तौर पर मुझे मालूम था कि जब से यह राज्य बना है विकास की रफ़्तार बदल गयी है और तेज़ हो गयी है।

आम तौर पर जब विकास की बात होती है तो लोग सरकार और सरकारी आँकड़ों की बात करते हैं। सच बात यह है कि सरकारी आँकड़े तो सब अपनी जगह ठीक हैं मगर विकास का मतलब है जनता का उसमें शरीक होना। वही असली विकास है। वही विकास ऐसा है जो सिर्फ एक दिन, दो दिन या दस दिन के लिये नहीं होता है बल्कि एक दरिया की तरह चलता रहता है। और जनता का विकास में भागीदार होना? उसके लिये ज़रूरत यह है कि पब्लिक में इसका ख़याल आये। हर बड़ा या बच्चा इसको समझे कि उसे भी कुछ करना है। बहुत समय हुए किसी और देश के एक नेता ने अपनी पब्लिक से एक सवाल पूछा। सवाल था- यह मत पूछो कि सरकार तुम्हें क्या दे सकती है। यह पूछो कि तुम देश के लिये क्या कर सकते हो। यह सवाल सिर्फ एक देश के लिये नहीं, हर समाज के लिये है, हर देश के लिये है।

अगर पौधे से शुरू करते हैं तो दरख़्त बड़ा होता है। पब्लिक की संस्थायें जब बनती हैं, जैसे कि आपकी संस्था है, इसमें तीन शब्द हैं और तीनों वज़न रखते हैं- सेवा, शिक्षा और पर्यावरण। अगर इस पर सोचा जाये तो आप सिर्फ़ इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि तीनों के बगैर गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती है। अगर सिर्फ एक को लेकर हम उछल जायें तो गाड़ी थोड़ी दूर जाकर रुक जाती है। तीनों को मिलाना और पब्लिक में यह अहसास पैदा करना कि तीनों साथ ही चल सकते हैं।

देखिये, आजकल दुनिया में बहुत चर्चा हो रही है, पर्यावरण पर। अगर पर्यावरण का असली मतलब समझना है तो किसी ऐसी जगह आना होगा। हम लोग जो, मैं यूपी का हूँ, दिल्ली में रहता हूँ। हम लोगों को रोज़ के उसमें अन्दाज़ नहीं होता है पर्यावरण का, एनवायरनमेंट का। मगर आपके यहाँ आप उसको रोज़ देखते हैं और उसमें अगर तब्दीली आती है तो वह भी आप समझते हैं। तो, अगर पर्यावरण को बचाना है, ठीक करना है तो वह काम जो है, पहाड़ी इलाकों से शुरू होता है और देश के समुद्र के किनारे जो इलाके हैं, वहाँ से शुरू होता है। अगर ये दो हिस्से हमने ठीक कर लिये तो बाकी धीरे-धीरे सब ठीक हो जाता है। तो, पर्यावरण की बात करना एक चीज़ है। दुनिया में इसकी बहुत चर्चा हो रही है। बड़ी-बड़ी कांफ्रेंस हो रही हैं। प्राइम मिनिस्टर जाते हैं, प्रेसीडेंट जाते हैं, बड़े-बड़े प्रोफेसर जाते हैं। मगर वहाँ जो फैसले होते हैं, और सोच-समझकर होते हैं, उसको यहाँ ज़मीन पर लाकर जो

नतीजा निकलना है वह यहाँ ज़मीन पर निकलेगा, कांफ्रेंस की कमेटी रूम में नहीं निकलेगा।

इसके लिये पब्लिक को उसमें उलझाना बहुत ज़रूरी हो जाता है।पब्लिक को उलझाने का मतलब यह है कि जब तक पर्यावरण की शिक्षा स्कूल के बच्चे से शुरू नहीं होती है वह बड़ों को नहीं सिखाई जा सकती है। वह तो फिर एक रस्म हो जाती है कि हम जायेंगे और कहेंगे, हाँ, पर्यावरण ठीक करना चाहिये। मैंने सुना था मगर देखा नहीं, कोई वजह नहीं कि मैं शुबह करूँ, कि कश्मीर में पहाड़ी अगर दरख़्त काटता है तो वहीँ पर एक पौधा उसी वक्त लगाता है। मुझे पूरा यकीन है कि यह सिर्फ़ कश्मीर की बात नहीं है। हर पहाड़ी इलाक़े में अगर आप दरख़्त काटते हैं तो उस दरख़्त की जगह दूसरा दरख़्त लगाते हैं और पाँच-दस साल में वह दरख़्त दुबारा बड़ा हो जाता है। तो, यह शिक्षा जो है यह स्कूल से भी पहले शुरू होती है। यह परिवार में शुरू होती है। माँ बच्चे को सिखाती है। बाप बेटे को सिखाता है। इसके बगैर काम नहीं चलेगा। तो, पर्यावरण और शिक्षा, दोनों जुड़े हुए हैं।

यह एक लेवल पर है। दूसरे लेवल पर आजकल अपने समाज में शिक्षा की बात बहुत हो रही है। यह लाज़मी चीज़ है कि शिक्षा की बात हो क्योंकि जनसंख्या बढ़ रही है। अपना देश नौजवानों का देश है। आगे की दुनिया में यही एक चीज़ है जो दूसरों के मुकाबले में हमको आगे बढ़ाने और आगे रहने में मदद करेगी। यूरोप की आबादी अब बूढ़ों की आबादी हो गयी है। यही अमेरिका की आबादी के साथ भी हो रहा है। चीन, जिसने बहुत तरक्की की है, सब जानते हैं और सब मानते हैं कि बहुत तरक्की की है, वहां भी आबादी जो है वह

जवानी से बुढ़ापे की तरफ़ जा रही है। सिर्फ अपना देश एक ऐसा है, बड़े देशों में, जहाँ की आबादी सिर्फ जवानों की है।

इसका मतलब यह है कि अगले बीस-तीस-चालीस सालों में आबादी का वह हिस्सा जो काम करेगा वह हमारे यहाँ सबसे ऊपर आयेगा। अगर यह है तो हमें अगले बीस-तीस सालों की तैयारी करनी होगी।

बड़े-बड़े विद्वान मानते हैं कि 2040-2050 में हिन्दुस्तान की इकॉनोमी दुनिया में दुसरे नंबर पर होगी, चीन के बाद और अमेरिका से ऊपर। वह यह भी मानते हैं कि जितने पढ़े-लिखे लोग- इंजीनियर, डॉक्टर, तकनीशियन, आईटी के लोग हिन्दुस्तान में होंगे वह बहुत कम देशों में होंगे। वह सब जो है देश के विकास के लिए बहुत ज़रूरी है। मगर सवाल जो हमारे सामने है, जो पब्लिक के सामने है, सरकार के सामने है, संसद के सामने है, समाज के सामने है कि हम उसकी तैयारी कैसे कर रहे हैं। पिछले महीनों में, पिछले सालों में इसकी बहुत चर्चा हुई। सरकार ने एक बहुत बड़ा कमीशन बनाया- नॉलेज कमीशन। उसने बहुत सोच-समझकर आगे का नक्शा खींचा। उसके बाद सरकार की नीति में ये तमाम चीजें ले ली गयीं। चाहे वह नई यूनीवर्सिटी खोलना हो, नये आईआईटी खोलना हो, चाहे सर्व-शिक्षा अभियान हो। मगर जैसे कि पेड़ पौधे से चलता है, शुरू वहाँ से होता है। उसी तरह से शिक्षा के मामले में यह फ़ैसला करना बहुत आसान हो जाता है कि हम आईआईटी खोलेंगे। यह फ़ैसला करना बहुत आसान हो जाता है कि हम यूनीवर्सिटीज खोलेंगे। मगर इस वक्त हमार सामने जो समस्या है वह यह है कि, कल-परसों दिल्ली में कोई मुझे बता रहा था, कि

आईआईटीज़ के लिये टीचर्स नहीं मिल रहे हैं। यूनिवर्सिटीज़ के लिये टीचर्स नहीं मिल रहे हैं। एक और चीज़ हो रही है और वह चिंताजनक है। चंद महीने पहले मैं दिल्ली आईआईटी के कन्वोकेशन में गया था। वहाँ मैंने कुछ आँकड़े देखे तो एक नई चीज़ उभरकर आयी। आईआईटी का नाम सिर्फ अपने देश में नहीं, पूरी दुनिया में है। आईआईटी से जो पास करके निकलता है उसको फ़ौरन नौकरी मिल जाती है। मगर पहली डिग्री लेने के बाद कितने ग्रेजुएट दूसरी डिग्री लेने के लिये आईआईटी में रहते हैं? उन आंकड़ों को कभी आप देखिये तो आपके सामने दूसरी तस्वीर आती है।

दूसरे इंजीनियरिंग कॉलेजों से लोग बैचलर ऑफ़ इंजीनियरिंग की डिग्री लेने के बाद आईआईटी में दाखिला लेते हैं, वहां से एम.टेक. करने के लिये या पीएच.डी. करने के लिये। मगर आईआईटी में जो लोग पीएच.डी. करते हैं या एम.टेक. करते हैं उनमें आईआईटी के ग्रेजुएट्स नहीं होते। इसका क्या मतलब? इसका मतलब यह है कि जिसको हम सबसे होशियार समझते हैं वह ख़ुद वहां रहने को तैयार नहीं है! वह आईआईटी में पढ़ाने के लिये तैयार नहीं है! मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आईआईटी में जो पढ़ाते हैं वे काबिल नहीं हैं। काबिल होते हैं, बहुत ज्यादा काबिल होते हैं मगर एक पीढ़ी में काबिलियत ख़त्म नहीं होनी चाहिये। आज जो प्रोफेसर है वह बहुत काबिल है, उसका दुनिया में नाम है। मगर पांच साल, दस साल या पन्द्रह साल बाद वह इस उम्र में पहुँचेगा कि वह रिटायर हो जायेगा। बावजूद इसके कि सरकार ने यह फ़ैसला लिया है कि यूनिवर्सिटी टीचर्स के लिये रिटायरमेंट की उम्र बढ़ा दी जाये। सही फ़ैसला है। लेकिन जो दूसरी पीढ़ी है उसकी तैयारी भी तो करनी है। वह

तैयारी नहीं हो पा रही है। यह एक सोचने की चीज़ है कि शिक्षा के मामले में हमने अगर बिल्डिंग ऊपर से बनानी शुरू की तो बिल्डिंग नहीं बनेगी।

सर्व-शिक्षा अभियान बहुत बड़ा क़दम है जो कि हम लोगों ने लिया है। मुझे हर जगह का नहीं मालूम, मुझे उत्तराखण्ड का नहीं मालूम है मगर जो आँकड़े मैंने देखे हैं और जो मैं अखबार में पढ़ता हूँ उसमें मुझे एक अंतर नज़र आता है। स्कूल खोल दिये गये, टीचर्स अप्वाइंट कर दिये गये और बच्चों का नाम भी खाते में चढ़ गया। मगर क्या वाकई सौ परसेंट स्कूलों में पढ़ाई हो रही है कि नहीं हो रही है? मेरे एक नौजवान मित्र हैं। वह अलीगढ़ के रहने वाले हैं। मुझे थोड़ा-बहुत योग का ज्ञान देने की कोशिश करते हैं तो हफ़्ते-दो हफ़्ते में एक बार आ जाते हैं। मैंने एक दिन पूछा कि बताओ तुम्हारे शहर का क्या हाल है। कहने लगे, साहब आजकल टीचर की नौकरी बहुत अच्छी हो गयी। मैंने कहा, वो कैसे? टीचर की नौकरी तो हमेशा से अच्छी थी। कहने लगे, इसलिये कि नये स्कूल खुल गये हैं। अब सरकार बहुत टीचर भर्ती कर रही है और बीस हजार तनख्वाह देती है। मैंने कहा कि अच्छी बात है, बहुत खुश होना चाहिये। कहने लगे कि नहीं, पूरी कहानी सुन लीजिये। जब आप भर्ती हो गये तो उसके बाद ज़रूरी नहीं कि आप रोज़ स्कूल जाइये। इंस्पेक्टर को खुश रखिये और इंस्पेक्शन के वक्त हाज़िर हो जाइये। उसके बाद अपनी दुकान चलाइये, खेती कीजिये या और जो भी मन में आये कीजिये! चलिये, आप सुखी हैं उस तरह तो ठीक है। मगर उन बेचारे बच्चों का क्या होता है जिन्हें माँ-बाप स्कूल भेजते हैं?

उसी से जुड़ी हुई एक दूसरी स्कीम जो एक बहुत अच्छी स्कीम है, बच्चों को दिन का खाना देना। बहुत शिकायतें सुनने को आती हैं। कुछ सही हैं, कुछ ज़रा बढ़ा-चढ़ाकर हैं। मैं एक गाँव में गया, मध्य-प्रदेश में। वहाँ मैंने एक चीज़ देखी जिससे कि बात मेरी समझ में आयी। उन्होंने मिड-डे-मील स्कीम का इंतजाम उन माँओं के सुपुर्द कर दिया था जिनके बेटे-बेटियाँ उस स्कूल में पढ़ते हैं। वो बात कुछ समझ में आयी इसलिये कि कोई माँ अपने बच्चे को ख़राब खाना नहीं खिलायेगी। कम खिला सकती है अगर ज़्यादा नहीं है तो लेकिन ख़राब खाना नहीं खिला सकती है। मैं यह मिसाल इसलिये दे रहा हूँ कि जब तक समाज इन तमाम स्कीमों के साथ नहीं जुड़ेगा ये स्कीमें पूरी तरह से नहीं चल सकती हैं। सरकार अपनी पूरी कोशिश कर ले, सरकारी अफसर, सरकारी मंत्री अपनी पूरी कोशिश कर लें, मगर जब तक जनता का उसमें पूरा सहयोग नहीं है ये स्कीमें नहीं चल सकती हैं। कम से कम पूरी स्पीड के साथ नहीं चल सकती हैं। ठीक है आप गाड़ी दूसरे गियर में चलाइये, पन्द्रह-बीस की रफ़्तार से मगर उससे अपने देश का काम पूरा नहीं हो सकता। गाड़ी चलना है, पूरा तेज़ चलना है और इस तरह चलना है कि जितने लोग हैं सब उस पर सवार हों। यह नहीं कि कुछ चलें और कुछ पीछे छूट जायें।

मैं अपनी दूसरी बात पर आता हूँ। समाज में सब हैं। हम लोग अक्सर भूल जाते हैं कि पचास प्रतिशत महिलायें हैं। जब तक उनको उनका पूरा हिस्सा नहीं मिलेगा, और यह

सिर्फ कानून की बात नहीं है, यह उससे आगे जाने की बात है। जब तक महिलायें पूरी तरह से विकास के तमाम कामों में शरीक नहीं होंगी, वह काम अधूरा रहेगा।

उसकी दो वजह हैं- पहली चीज़ तो यह है कि आधी आबादी को आप पीछे नहीं छोड़ सकते हैं और न आप आधी आबादी से काम न लेने का कर सकते हैं। इसलिये कि काम आधा होगा, तीन-चौथाई होगा लेकिन पूरा नहीं होगा। दूसरी चीज़ यह है कि स्कूल से शुरू होकर जब तक इन बच्चियों को पढ़ाया-लिखाया नहीं जायेगा और वही बच्चियाँ बड़ी होकर माँए बनेंगी तो वे अपने बच्चों को कैसे ठीक से पढ़ाएंगी-लिखायेंगी?

देखिये, हमारे समाज में कुछ बड़ी अच्छी बातें हैं और कुछ बुरी बातें हैं। जब तक हम दोनों को नहीं समझेंगे और सच्चे दिल से ये मानेंगे कि जो खराबियाँ हैं उन्हें ठीक करना है और जो अच्छाइयाँ हैं उन्हें खिड़की से बाहर नहीं फैंकना है... ये भी एक बीमारी चली है कि अच्छाइयों को सिर्फ इसलिये बाहर फैंक दो कि वे पुरानी हैं। यह नहीं करना है। मगर जो बुराइयाँ हैं उनको ठीक करना है। हमारे समाज में बहुत बुराइयाँ हैं। हम सब जानते हैं। ज्यादा उन पर कमेंट्री करने की ज़रूरत नहीं है। मगर वे बुराइयाँ भी सरकारी कानून से ख़त्म नहीं होती हैं। कानून तो बहुत हैं हमारे पास। जितने कानून अपने देश में बने हैं दुनिया में कहीं नहीं बने हैं। जितने अच्छे कानून काग़ज पर हमारे में बने हैं वह शायद कहीं नहीं बने हैं। मगर कानूनों को प्रैक्टिकल बनाना- इस मामले में हम दूसरों से पीछे रह जाते हैं।

दूसरी चीज़ यह है कि महिलाओं को पूरी तरह से विकास के हर काम में- राजनीति में, सोशल-वर्क में, पढ़ाई-लिखाई के काम में- जोड़ना है। इसमें काफ़ी प्रोग्रेस हुई है। लोगों की समझ में बात आ रही है। बीच-बीच में रोड़े और कठिनाइयाँ भी हैं।

मेरी तीसरी बात यह है कि अपना जो समाज है वह दुनिया में एक अजूबा समाज है। कितनी भाषायें हैं, कितने धर्म हैं, तरह-तरह के लोग हैं। हमारे पुरखों ने जो फैसले लिये, जिस तरह का देश बनाया वह सही फैसले लिये। यूरोप की एक बहुत बड़ी नेता पिछले साल दिल्ली आयी थीं। उन्होंने मुझसे एक सवाल पूछा कि हमको ताज्जुब होता है कि हिन्दुस्तान कैसे चलता है! आपके यहाँ इतनी तरह-तरह की चीजें हैं, पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण! मैंने कहा बड़ा आसान है। वह कहने लगीं कि आसान तो हो ही नहीं सकता। मैंने कहा कि नहीं, सच बात है, बिल्कुल आसान है। वह मेरा मुँह देखें कि आप मज़ाक कर रहे हैं। मैंने कहा कि मज़ाक नहीं कर रहा हूँ तो कहने लगीं, कैसे करते हैं? मैंने कहा कि हम एक सर्किल बनाते हैं, दायरा बनाते हैं जिसको इतना बड़ा रखते हैं कि उसमें सब आ जाते हैं। अगर हम छोटा सर्किल बनाते हैं तो उसमें कुछ आते हैं, कुछ बाहर रह जाते हैं और फिर गड़बड़ शुरू हो जाती है। तो, दूसरे देशों में यह बात अब लोगों की समझ में आ रही है कि अगर समाज के किसी हिस्से को किसी वजह से आप अलग करेंगे तो आपके लिये कठिनाइयाँ पैदा होंगी और अगर आप सबको अपने सर्किल में ले लेंगे तो हो सकता है कि रफ़्तार थोड़ी धीमी हो मगर सब आपके साथ चलेंगे। यह बहुत बड़ी चीज़ है।

मेरी आखिरी बात जो है वह भी आपकी संस्था के नाम में है। वह सेवा से जुड़ी है। हमारी परंपरा में सेवा की बहुत ऊँची जगह है। हर धर्म में यह कहा गया है कि आप समाज की सेवा कीजिये और समाज की सेवा में हिस्सा लीजिये। देश के हर गाँव में आप चले जाइये और आपको इस बात का सबूत मिल जायेगा। मगर जब आप गाँव से हटकर शहरों में जाते हैं, छोटे शहरों से हटकर बड़े शहरों में जाते हैं तो वहां कहीं रास्ते में लोग इस सबक को भूल जाते हैं। छोटी-छोटी संस्थायें तो हर जगह हैं मगर बड़े शहरों में अगर आप संस्थायें तलाश कीजिये, सेवा की, तो आपको आमतौर पर, हो सकता है, मैं नहीं जानता हूँ, आप किसी मंदिर में चले जाइये, किसी मस्जिद में जाइये, किसी गुरूद्वारे में चले जाइये, किसी गिरिजाघर में चले जाइये- वहां आपको सेवा जीती-जागती, साल के हर दिन मिलेगी। मगर इन इबादतगाहों के बाहर थोड़ा तलाश करना पड़ता है। मैं यह नहीं कहना चाहता हूँ कि सेवा सिर्फ सिर्फ़ धार्मिक जगहों पर ही हो सकती है। धार्मिक जगहों पर जो सेवा हो रही है वह आज से नहीं हजारों साल से हो रही है, बहुत अच्छी हो रही है और चल रही है। मैं, बहुत साल हुए, जब ईरान में राजदूत था तो 1991 की लड़ाई हुई थी, इराक की, और हम लोगों को चिंता यह थी कि वहाँ जो हिन्दुस्तानी वर्कर्स हैं उनका क्या होगा। कैसे उन्हें निकाला जायेगा? निकालने के दो रास्ते थे। एक यह था कि वे इराक से पश्चिम जायें और जॉर्डन में सरकार ने उनको हवाई जहाज से वापस लाने का इंतजाम किया था। दूसरा रास्ता यह था कि वे इराक से बॉर्डर क्रॉस करके ईरान में आयें और ईरान से हम करें। एक दिन सुबह हमको खबर लगी कि तीन सौ-साढ़े तीन सौ हिन्दुस्तानी वर्कर्स इराक से ईरान में आ गए हैं और पता नहीं अब उनका क्या होगा। तेहरान शहर में दो पुराने गुरूद्वारे हैं। उनसे हमने बात की। उन्होंने कहा कि साहब आप चिंता मत कीजिये; तीन सौ आदमियों को खिलाने की ज़िम्मेदारी हमारी है। हफ्ता- दस दिन वे लोग वहाँ रहे, जब तक हवाई जहाज का इंतजाम हुआ। वे सब देश वापस आ गये। उन तीन सौ लोगों को भारत सरकार की एम्बेसी नहीं खिला सकती थी। उसके पास न आदमी थे, न खाना पकाने के बर्तन थे; कुछ नहीं थे। न सरकार में उस ज़माने में सकत थी कि सबको किसी सराय या होटल में ठहरा सकती। मगर पब्लिक ने मदद की, गुरूद्वारों ने मदद की। सबने लंगर में खाना खाया। किसी ने शिकायत नहीं की। तो इस तरह की समाज सेवा जो है वह अपने यहाँ रोज़ हो रही है। मगर ज़रूरत है इस सेवा को ज़रा आगे बढ़ाना।

आपकी संस्था उस पर काम कर रही है। बालवाड़ी है आपके यहाँ, महिलाओं के लिये ग्रुप बना रखे हैं और मुझे उम्मीद यह है कि यह चीज़ सिर्फ शहर में होकर न रह जाये।

स्वर्गीय बी.डी. पाण्डेजी सरकार के बहुत बड़े अफसर थे। बहुत काम किया उन्होंने। मगर, जैसा कि अरुण सिंहजी ने कहा कि, वह काम जो उन्होंने चालीस-पचास साल तक सरकारी ओहदों पर किया वह एक तरफ और जो आखिरी बीस साल उन्होंने यहाँ आकर किया वह दूसरी तरफ। मैं नहीं कह सकता मगर आप लोग कह सकते हैं कि अगर दोनों को तराज़ू में तौला जाये तो बराबर होंगे, कमोबेश होंगे मगर यह नहीं होगा कि तराज़ू एक ही तरफ बैठेगा। ऐसे लोगों की और ज़रूरत है। एक-दो की नहीं, दस-बीस-पचास हज़ार की ज़रूरत है जो छोटी-छोटी जगहों में जाकर- गाँव में जाकर, शहरों में जाकर ये बेदारी पैदा करें कि बहुत कुछ काम पब्लिक ख़ुद कर सकती है, आपस में मिलजुल के कर सकती है। अगर पब्लिक मिलजुल के कर सकती है तो उसके बाद सरकार से डिमांड करना बहुत आसान हो जाता है।

सरकार की अपनी मजबूरियाँ हैं। ठीक है। सब कहते हैं अफसरशाही है। अफसरशाही उसका एक हिस्सा है, मगर मजबूरियाँ भी हैं। अगर पब्लिक समर्थन करती है तो वे मजबूरियाँ बहुत कम हो जाती हैं और साथ-साथ पब्लिक को ख़ुद अन्दाज़ होता है कि काम हो रहा है, कैसा काम हो रहा है। उसके बाद आपको सिर्फ किसी टीवी चैनल पर नहीं देखना है, किसी अख़बार में नहीं पढ़ना है। मुझे ज्यादा नहीं कहना चाहिये, मृणाल जी बैठी हुई हैं यहाँ। मगर यह काम समर्थन के साथ हो सकता है।

आखिर में मुझे यही कहना है कि अफ़सोस यह है ऐसी सुन्दर सी जगह में चंद घंटों के लिये आया हूँ। मगर मैंने वायदा किया है कि मैं आऊँगा, दुबारा आऊँगा और समय निकालकर आऊँगा। मगर मुझे यहाँ आकर बड़ी ख़ुशी हुई कि ऐसा काम हो रहा है, सही

तरीक़े से हो रहा है और जो ज़रूरतें है उनको तराज़ू में रखकर सेवा भी हो रही है, शिक्षा भी हो रही है, परिवर्तन की बात भी हो रही है- सब कुछ साथ हो रहा है। तो, एनवायरनमेंट अपनी जगह है, एजुकेशन अपनी जगह पर है और सर्विस अपनी जगह पर है। सब साथ मिलकर जब आप गाड़ी आगे बढ़ायेंगे तो बहुत अच्छी चलेगी। आप इसको चलाते रहिये।

धन्यवाद।

***

तृतीय बी डी पांडे स्मृति व्याख्यान- 31 मार्च, 2012

** श्री गोपालकृष्ण गांधी **

"भारत, हिंदुस्तान और इंडिया"

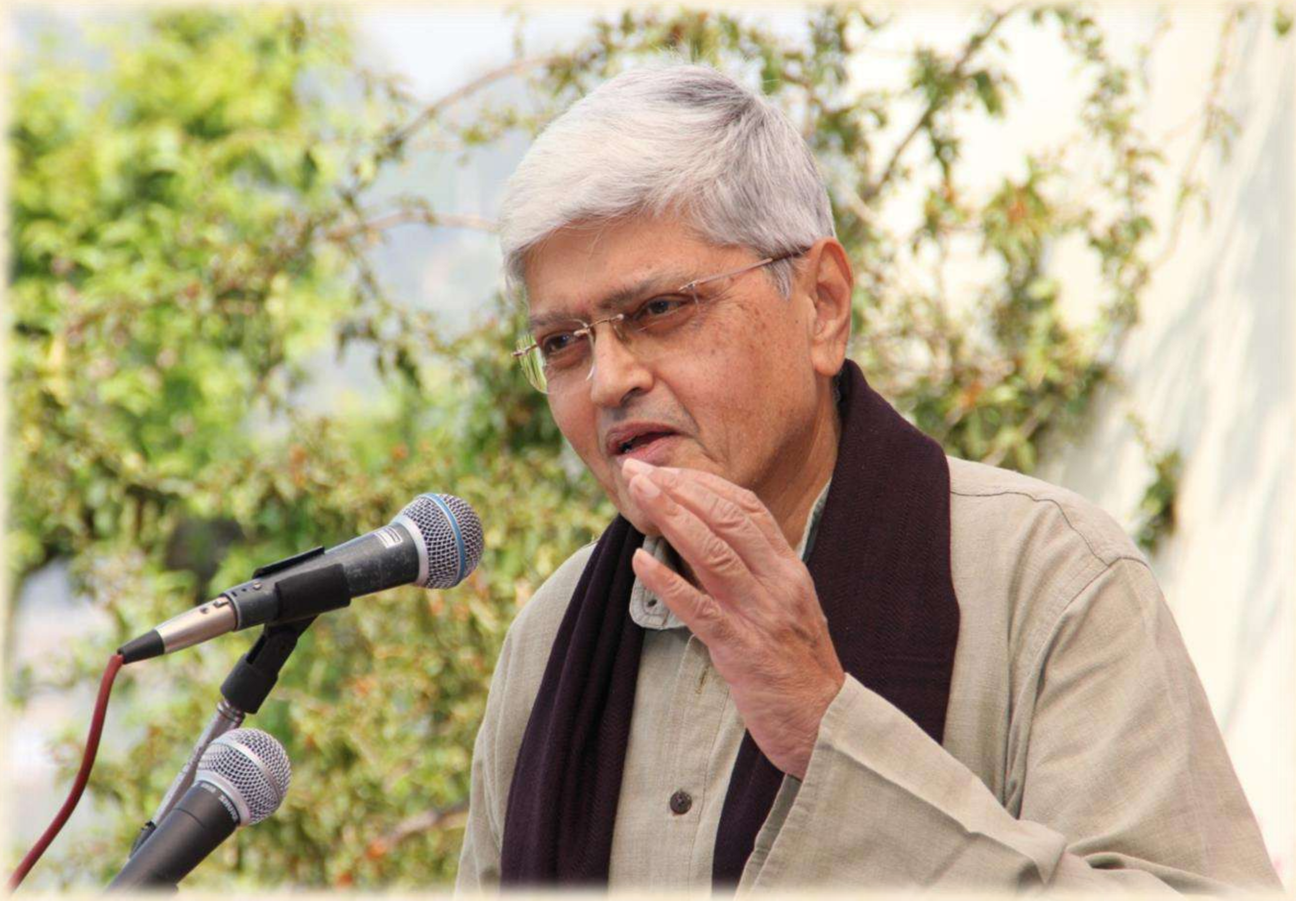

इस सभा में उपस्थित सज्जन दिवंगत श्री भैरब दत्त पांडे को मुझ से कहीं बेहतर जानते थे। मुझे उनको जानने का सौभाग्य न मिला, परंतु उन्हें मानने का अहोभाग्य ज़रूर मिला। और उनके व्यक्तित्व की जानकारी भी मुझे बारबार मिलती रही और इतना मैंने अवश्य ताड़ लिया कि उनमें कुछ ऐसे गुण थे, जिन्हें हम आज मशाल लिए अंधेरे में ढूंढ़ते हैं, पाते नहीं। श्री बी. डी. पांडे इंडियन सिविल सर्विस के आकाश के भटके सितारों में नहीं थे, न ही धूमकेतु, जो कि अब आया और अब ग़ायब। वे उन ग्रहों में एक थे, जो कि अपनी ज्योति स्थिर रखते हैं और बदलते मौसमों से अविचलित उस नभ के ऐसे सदस्य होते हैं, जिन्हें अपनी प्रगति से नहीं, बल्कि क्रम से और कर्म से मतलब है। क्रम और कर्म, दोनों। अपने काम के लिए पंक्ति-भेद करना, क्रम को तोड़ना, औरों के पथ में बाधक होना, यह उनसे न होता था। अतएव उनका सम्मान इसलिए मात्र नहीं था कि वे प्रशासन में दक्ष थे, बल्कि इसलिए कि उनको वफ़ादारी और ताबेदारी का अंतर मालूम था, निष्ठा और चापलूसी का अंतर मालूम था, अधिकार और अधिकारवाद का भेद मालूम था, गर्व और अहंकार का फ़र्क मालूम था। आकांक्षा जो है, वह महत्वाकांक्षा से भिन्न होती है। भैरब दत्त जी यह अपने अंतस में जानते थे। समसामयिकता क्या होती है और समयपूजा क्या होती है, यह भी वे अच्छी तरह जानते थे। वे इतने 'आनेवाले कल' के कभी न बने कि बहुरूपी कहलाएं, वे इतने बीते कल के भी न रहे कि पुरातन के भग्नावशेष दिखें। और जब अनेक पदावलियों को सुशोभित कर, सक्रिय कर, सम्मानित कर, उन्होंने विराम पाया, विश्राम पाया, तब काल के बदलाव से असंतोष में नहीं, उससे बहस करते हुए, लड़ते-भिड़ते हुए नहीं, बल्कि, विमला-जी के साथ एक अंबरीय बगुल-युग्म समान उस सूर्यांश में एक लालित्य के साथ विलीन हुए, उस अर्क के समान, जो कि अपने अवतलन के क्षणों में आकाश को लालिमा प्रदान करता है।

आज मैं श्रीमती विमला पांडे का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता। मेरे मित्रोदार मित्र और अलमोड़ा के भूतपूर्व कलेक्टर श्री केशव देसिराजू के अनुग्रह से, मुझे विमला-जी से मिलने के मौक़े हुए। विमला-जी की शालीनता, उनकी तेहज़ीब, और उनकी बुद्धि अनुपम थी। किसी प्राचीन युग में वे भास्कर-नंदिनी लीलावती रही होंगी। उनकी देह जितनी भारहीन थी, उतना ही उनका मानस सारगर्भित था। थोड़े से शब्दों में वे बहुत कुछ कहने की क्षमता रखती थीं। आजकल बहुत से शब्दों में बहुत थोड़ा कहा जाता है। और शायद इस स्मृति व्याख्यान में मैं कुछ ऐसा ही करूंगा।

उस गरिमामयी दांपत्य को अपना प्रणाम अर्पित करते हुए, और उनके पुत्र और मेरे आत्म-बली मित्र श्री ललित पांडे को इस अवसर के लिए हृदयज धन्यवाद देते हुए, आप सबों की अनुमति से, निर्धारित विषय पर अपने विचार खोलता हूं।

'भारत', 'हिंदुस्तान' और 'इंडिया' - तीन नाम। तीनों सही, तीनों वैध, तीनों अपनी-अपनी जगह में पुख़्ता।

तो फिर?

आप पूछ सकते हैं : 'उन पर यह व्याख्यान क्यूं? क्या आपकी आत्म-श्लाघा के लिए मात्र?'

उस तीखे सवाल में तुक है। मेरे चारित्र्य-रसायन में आत्म-श्लाघा शक्तिमान है, मुझमें 'मुझ-जैसी' बहुत है, मेरी ख़ुदी में ख़ुदबीनी भरी है। वरना क्या मैं ऐसी वक्तव्य-शृंखला में शामिल

होता, जिसमें मुझसे आगे तवारीख़ी सद्र-ए-रियासत-जम्मू-कश्मीर डॉ कर्ण सिंह-जी और आज के नायब सद्र-ए-हिंद डॉ हामिद अंसारी बोल चुके हैं? रश्मि-रेखाओं को संवार रहे मयूरों के बीच कबूतर की गुटर-गूं...

लेकिन इस शीर्षक में, इस विषय के चयन में, उस ईगो के परे कुछ और भी है, जिस पर इस जैसी सभा में आत्म-विचार उचित हो सकता है, वाजिब और लाज़िमी हो सकता है।

तो आपकी अनुमति से प्रस्तुत करता हूं, पेश करता हूं, प्रज़ेंट करता हूं 'भारत, हिंदुस्तान और इंडिया' की कुछ तहों को। तहें अंतर्लिप्त हैं, जैसे लपेटे हुए शॉल की तहें होती हैं... उसकी थान एक है, बुनाई एक, नर्माई एक, खुरदुराई एक, पर उसकी हर लंबी तह स्वावलंबित होती है, अपने में लिप्त, अपनी गर्मी बनाए हुए, अपनी नर्मी में प्रसन्न और अपनी सीमा के मोड़ पर अगली तह से सिमटी हुई।

तो बस? हो गई बात ख़त्म? आप पूछ सकते हैं, 'भारत, हिंदुस्तान, इंडिया - तीनों चलते हैं, इंडिया में मिली-जुली ज़ुबान चलती है, बस इतना ही कहना था तो कह दिया है आपने, और कहने को रहता क्या है - चले, चलें?'

कुछ रहता है। 'भारत' में बहुत कुछ रहता है, 'भारत' में इंडिया रहता है। और हिंदुस्तान? वो कहां है?

हिंदुस्तान रहता है वहां, जो कि नामों से आगे है, ज़ुबानों से, वर्णनों से, विवरणों से आगे है, जो कि मायना रखता है हमारे समाज की उस अंतर्वस्तु से, जिसको हिंदुस्तानी में कहते हैं, 'सिफ़त'। सिफ़त? नाउ व्हाट ऑन अर्थ इज़ दैट?

उर्दू तालिबी-इल्म महारानी विक्टोरिया को उनके दुभाष अब्दुल करीम ने ग़ालिबन समझाया होगा, 'योर मेजेस्टी, देयर इज़ अ वर्ड... सिफ़त... इफ़ योर मेजेस्टी वांट्स टु अंडरस्टैंड योर मेजेस्टीज़ क्रॉउन ज्वेल, यू मस्ट नो इट्स सिफ़त... 'सिफ़त' मीन्स, योर मेजेस्टी, 'क्वालिटी', 'इनर क्वालिटी', 'इसेंस'... लाइक, योर मेजेस्टी योर सिफ़त कैन बी डिस्क्राइब्ड एज़ 'इम्पीरियल ग्रेंजर'...'

यह वार्तालाप काल्पनिक है, उसका वजूद महज़ मेरे ख़्याल में है। लेकिन मैं मानना चाहता हूं कि इस पर मलिका ने शायद अब्दुल से पूछा होगा 'एंड अब्दुल व्हाट इज़ योर ओन 'सिफ़त'?' कुछ सहमकर, झिझकते हुए, साफ़गोई के एक लमहे में अब्दुल करीम ने कहा हो सकता है 'माय 'सिफ़त', मेजेस्टी... माय 'सिफ़त'... आई हैव लॉस्ट इट, योर मेजेस्टी... इन प्रिटेंडिंग टु बी एन इंडियन प्रिंस इन लंदन, एन अंग्रेज़ साहिब इन आगरा, व्हेन एक्चुअली आई एम ओनली अ मुख़लिस हियर, योर मेजेस्टीज़ सर्वेंट, आई हैव गेन्ड टू फ़ैंसी ड्रेसेस - वन फ़ॉर लंदन एंड वन फ़ॉर आगरा - बट हैव लॉस्ट माय रियल 'सिफ़त'...'

हमारे वालिदैन 'सिफ़त' का, इस अरबी-फ़ारसी लफ़्ज़ का हमसे ज़्यादा इस्तेमाल करते थे। जैसा कि वे हमसे ज़्यादा इस्तेमाल करते थे सूती कपड़ों का, बे-रईसी ऊन का, ग़रीब दिया-सलाई का, माटी की बाती का, रूई की वर्तिका का, कड़क भूरे गुड़ का, अलाव की धीमी आंच का, तपे हुए तवे का, हाथ के पिसे सुफ़ूफ़ का, हथेलियों से गुंधे आटे का, कलम-सियाही का, शीतल सुराही का। उन सब चीज़ों में अपनी एक सिफ़त थी, समझिये एक शराफ़त थी। उन वस्तुओं के उत्तराधिकारियों में, उन असबाब के आल औलाद में, उनकी नस्ल में, सिफ़त कम है, इफ़्फ़त कम है। नाम है, रुआब-दाब है, पर सिफ़त...

तब क़द्र ज़्यादा थी, अब क़ीमत ज़्यादा है। 'सुमन' कह गए हैं - शिवमंगलसिंहजी 'सुमन' - **'कहीं भली है कटुक निबोरी कनक कटोरी के मैदा से...'**

आज का विषय - भारत, हिंदुस्तान और इंडिया - हमारी उस सिफ़त से मतलब रखता है, जिसकी बदौलत मुंशीजी (यानी मुंशी प्रेमचंद) 'इलाहाबाद' का प्रयोग कर सकते थे और प्रयाग का इस्तेमाल भी। 'शतरंज के खिलाड़ी' का यह हिस्सा लीजिए : 'नवाब वाजिब अली पकड़ लिए गए थे और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिए जा रही थी... मिर्जा ने कहा : 'हुज़ूर नवाबसाहिब को ज़ालिमों ने क़ैद कर लिया है।' मीर : 'होगा, यह लीजिए, शह।' मिर्जा : 'जनाब ज़रा ठहरिये। इस वक़्त इधर तबीयत नहीं लगती... बेचारे नवाबसाहिब इस वक़्त ख़ून के आंसू रो रहे होंगे' मीर : 'रोया ही चाहें। यह ऐश वहां कहां नसीब होगा। यह किश्त!'

मिर्जा :... 'कितनी दर्दनाक हालत है।' मीर : 'हां, सो तो है ही - यह लो, फिर किश्त!...''
मुंशीजी लिखते हैं : 'आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह ख़ून बहे बिना न हुई होगी।'

इन जुमलों में भारत का उल्लेख है, हिंद का जिक्र, इंडिया की पहचान। इन जुमलों में हिंदी की झलक है, उर्दू की महक है। और नेपथ्य से 'ज़ालिमों' के उस एक लफ़्ज़ में अंग्रेज़ी हुक़ूमत की तुतलाहट।

तो पूछ सकते हैं आप : 'अच्छा, तो आपका इशारा हमारी 'विविधता-में-एकता' की परंपरा से है, क्यूं जी?' जी नहीं, मेरा संकेत किसी नारे या किसी 'क्लीशे' पर नहीं टिका है। वह एक रवैये से जुड़ा है, एक रिवाज से, एक इल्म-ए-रूह से, एक मनोभाव से, जो कि आज जीर्ण हुआ जा रहा है।

एक दूसरे संदर्भ में मैंने हाल में कहा था कि आज हमारी सियासत का जिस्म - सियासत-ए-हिंद का जिस्म - बुलंद है, पर उसकी रूह, नासाज़। उस ही तरह में यहां कह सकता हूं कि भारत का तन बलवान हे, हिंदुस्तान की रूह दुर्बल, मंद। निराला के शब्द याद आते हैं : 'स्नेह निर्झर बह गया है, रेत-सा तन रह गया है...'

भारत बलवान है, हिंदुस्तान दुर्बल, और इंडिया? दोस्तो, इंडिया है, 'एयर इंडिया' की तरह - 'अंडर बेल-आउट एंड मेंटेनेंस'। समय ने उस पर ज़ख़्म लगाए हैं, और उस ही समय ने उसको मरहम-पट्टियों से बांधा भी है। इलाज में या फिर समझिये रिपेयर की ख़ातिर, एक परमानेंट स्कैफ़ोल्डिंग में अध-छिपा, अध-खुला, कभी राष्ट्रीयता और समाजवाद की एक आंख

से तो कभी अंतर-राष्ट्रीयता और उदारवाद की दूसरी आंख से, इंडिया ज़माने को देख रहा है और ज़माने को दिख रहा है।

इन मिले हुए हालात के पीछे एक मिली हुई तवारीख़ है।

मैं बहुत पीछे नहीं जाऊंगा। पिछली सदी को ही लें।

हमारा संविधान मूल रूप में अंग्रेज़ी में लिखा गया है। उस भाषा में नहीं, जिसको उस ही संविधान ने 'राजभाषा' का नाम दिया है, बल्कि अंग्रेज़ी में। यह इतिहास का सत्य है। उसका हिंदी संस्करण जो है, वह अनूदित है, मूल नहीं। और उस संविधान के उद्घाटनीय शब्द हैं : 'इंडिया दैट इज़ भारत…' यह चार शब्द गंभीर विचार और विवाद के बाद अंकित हुए। बात केवल नाम की नहीं थी। बात थी आत्म-वर्णन की, आत्म-निश्चय की, यानी ख़ुद की पहचान की, सेल्फ़-डेफिनेशन की। संविधान सभा में इस प्रारूपित सूत्रीकरण को जब शिब्बनलालजी सक्सेना ने देखा तो तिलमिला गए। स्वतंत्र भारत में 'वंदे मातरम' के प्राबल्य के उस समर्थक ने 15 नवंबर 1948 के दिन सभा में कहा 'इंडिया दैट इज़ भारत' नहीं चलेगा, हमें कहना चाहिए, 'द नेम ऑफ़ द यूनियन शैल बी भारत'। यूपी से चुने हुए शिब्बनलालजी और सीपी-बिरार के सेठ गोविंददासजी, दोनों हिंदी के भीतरी प्रदेशों से थे।

फिर दूर दक्खिन से आए संस्कृतविद् श्री अनंतशयनम् आयंगर, जो बाद में स्पीकर लोकसभा बने, उठे और सामंजस्य के पक्ष में बोले : 'द… सबस्टिट्यूशन ऑफ़ नेम्स - भारत, भारतवर्ष, हिंदुस्तान फ़ॉर द वर्ड इंडिया इन आर्टिकल 1, क्लॉज़ (1)… रिक्वायर्स सम कंसिडरेशन।'

बात स्थगित हुई, लगभग एक साल तक। सत्रह सितंबर 1949 के दिन संविधान सभा ने मुद्दा फिर से उठाया। डॉ आंबेडकर का प्रारूपी आर्टिकल 1 क्लॉज़ (1) जो था : 'इंडिया, दैट इज़ भारत शैल बी अ यूनियन ऑफ़ स्टेट्स' बहस का मुआमिला बना। सेठ गोविंद दास फिर से उठे और श्री हरि विष्णु कामथ के साथ बोले कि सूत्रीकरण होना चाहिए : 'भारत, ऑर इन इंग्लिश लैंग्वेज, इंडिया शैल बी अ यूनियन ऑफ़ स्टेट्स…'। दोनों ने कहा 'इंडिया' तो सिंधु नदी लांघने पर यूनानियों ने उस इलाक़े को नाम दिया, बस, वरना भारत, 'भारत' ही रहता।

इतवार 18 सितंबर, 1949 को सभा फिर मिली। (ग़ौरतलब है कि संविधान सभा सप्ताहांत में भी काम करती थी, अब की तरह नहीं।) श्री कामथ टुक द फ़ील्ड एंड मूव्ड दैट फ़ॉर डॉ आंबेडकर्स ड्राफ़्ट 'इंडिया, दैट इज़ भारत, शैल बी अ यूनियन ऑफ़ स्टेट्स', द फ़ॉलोइंग बी सबस्टिट्यूटेड : 'भारत, ऑर इन इंग्लिश लैंग्वेज, इंडिया, शैल बी अ यूनियन ऑफ़ स्टेट्स'।

पर उन्होंने एक विकल्प भी दिया : 'हिंद, ऑर इन द इंग्लिश लैंग्वेज, इंडिया, शैल बी अ यूनियन ऑफ़ स्टेट्स'', कुड ऑलसो बी कंसिडर्ड। तो इस तरह 'भारत' और 'हिंद' दोनों सदन के पटल पर रखे गए। श्री कामथ ने और कहा : 'इट इज़ कस्टमरी अमंग मोस्ट पीपुल्स ऑफ़ द वर्ल्ड टु हैव व्हाट इज़ कॉल्ड अ नामकरण ऑर अ नेमिंग सेरेमनी फ़ॉर द न्यू-बॉर्न। इंडिया एज़ अ रिपब्लिक इज़ गोइंग टु बी बॉर्न वेरी शॉर्टली एंड नेचरली देयर हैज़ बीन अ मूवमेंट इन द कंट्री अमंग मेनी सेक्शंस - आलमोस्ट ऑल सेक्शंस - ऑफ़ द पीपुल दैट दिस बर्थ ऑफ़ द न्यू रिपब्लिक शुड बी अकम्पनीड बाय अ नामकरण सेरेमनी एज़ वेल... सम से, व्हाय नेम द बेबी एट ऑल? 'इंडिया' विल सफ़ाइस...!' इस बानी में हरि विष्णु-जी काफ़ी देर बोलते गए... बोलते गए। फिर एक सदस्य से रहा न गया। वे उठे और सभापति बाबू राजेंद्र प्रसाद को संबोधित करते हुए बोले : 'इज़ इट नेसेसेरी टु हैव ऑल दिस? आई डु नॉट अंडरस्टैंड द परपज़ ऑफ़ इट... इट मे बी वेल इंट्रेस्टिंग इन सम अदर प्लेस... आई एम वेरी सॉरी, बट देयर ऑट टु बी सम सेंस ऑफ़ प्रपोर्शन, इन व्यू ऑफ़ द लिमिटेड टाइम ऑफ़ द हाउस।' सदस्य और कोई नहीं- डॉ आंबेडकर थे।

राजेन्द्र बाबू ने फ़ैसला सुनाया कि कामथ अपना संशोधन संक्षेप में प्रस्तुत करें, और चुन लें - भारत या हिंद, दोनों नहीं चलेगा। सदस्य ने 'भारत' चुना। बहस हुई। बहस क्या, समझिए, फिर से आलाप हुआ, वार्तालाप हुआ, प्रथमा, मध्यमा, अंतरा... डॉ आंबेडकर सबुरी से सुनते गए...

बारी आई बोलने की बनारस नंदन पंडित कमलापति त्रिपाठी की। पंडितजी बोले थे शुद्ध हिंदी में, पर मैं अंग्रेज़ी उद्धरण देता हूं: 'सर, आई एम एनामॉर्ड ऑफ़ द हिस्टोरिक नेम - भारत... द गॉड्स हैव द कीन डिज़ायर टु बी बॉर्न इन द सेक्रेड लैंड ऑफ़ भारत।' और फिर वे वार्तालाप में ले आए स्वयं श्री राम को। पंडितजी ने कहा कि भारत में एक गूंज है। कौन-सी गूंज? कैसी गूंज? भारत के नाम में एक ध्वनि है। कैसी ध्वनि? वह ध्वनि है, जो 'ट्वैंगलिंग द कोर्ड ऑफ़ द बो' - रामबाण के कंपन से झंकृत स्वर, सुस्वर, प्रतिस्वर - '(व्हिच) सेंट इकोज़ थ्रू द हिमालयाज़, द सीज़ एंड द हेवन्स,' यानी जिसकी गूंज उठी हिमालय पर, सागर पर, अंबर पर...' भारत...

डॉ आंबेडकर से अब और बर्दाश्त न हो सका। खड़े हुए, और राजेन्द्र बाबू से उन्होंने पूछा : 'इज़ ऑल दिस नेसेसेरी, सर? देयर इज़ अ लॉट ऑफ़ वर्क टु बी डन।' पंडित कमलापति त्रिपाठी संस्कृतविद् तो थे ही, पर वे विवेकी कांग्रेसी भी थे।

सदन की भावना देखकर, ड्राफ्टिंग कमेटी के चेयरमैन के रुख़ को देखकर, और शायद पंडित जवाहरलाल नेहरू के तावपूर्ण चेहरे को देखकर, पंडित कमलापति त्रिपाठी ने विद्या छोड़ी, विवाद छोड़ा, और पकड़ा - विवेक। स्वर बदला, प्रतिस्वर बदला, बाबासाहेब का ज्वर देखकर, त्रिपाठी-जी ने सुर भी बदला। अब उन्होंने डॉ आंबेडकर को बधाई दी कि अपने प्रारूप में संविधान के निर्माण-स्वरूप डॉ आंबेडकर 'भारत' को ले तो आए, भले ही 'इंडिया' के बाद ही। अंबर पर न भी सही, 'भारत' दूसरे नंबर पर तो है... फिर त्रिपाठी-जी बोले 'संविधान में भारत के प्रवेश से, हमारे देश की आत्मा लौट आई है...' इस ही को शायद कहते हैं 'कंसेंसस बिल्डिंग'।

श्री एचवी कामथ के संशोधन - 'भारत' को 'इंडिया' के आगे लगाने के मसौदे पर वोटिंग हुई, 'बाय अ शो ऑफ़ हैंड्स'। श्री कामथ के संशोधन के समर्थन में - यानी 'भारत दैट इज़ इंडिया' के समर्थन में - 38 हाथ उठे, डॉ आंबेडकर के यानी 'इंडिया दैट इज़ भारत' के प्रस्ताव के समर्थन में 51 हाथ। बहरहाल, 13 वोटों के अंतर से, 'इंडिया दैट इज़ भारत' पारित हुआ, 'इंडिया जो कि भारत है' हमारा देश बना।

बहरहाल हम सबों ने एक बढ़िया विधान पाया, 'इंडिया' का शुभनाम आया, 'भारत' ने सम्मान कमाया, पर इस सब को देख नुक्कड़ पर बैठे, बेचारा और बेगाना-सा 'हिंदुस्तान' मुस्कराया... पास उस ही के बैठे नन्हे से तराने ने अब सांस के नीचे, सूखे लबों से, रुखे मिजाज़ से गुनगुनाया... इक़बाल का भूला गीत... हिंद ने तराने को देखा, तराने ने हिंद को, फिर दोनों हाथ एक-दूसरे के थामे बोले हौले-हौले 'हम बुलबुलें...'

कुछ इस ही तरह हमारे नए 'एंथम' के लिए, गुरुदेव के 'जन गण मन' और बंकिम के 'वंदे मातरम' को लेकर चर्चा हुई थी। चयन अंत में गुरुदेव की कृति का हुआ, पर हमारे विवेक ने बंकिम की रचना को भी एक विशेष स्थान दिया, वह नेशनल एंथम न ही सही, नेशनल सॉन्ग बना। मित्रो, आज हम एक बेहतरीन राष्ट्रीय गान - नेशनल एंथम - के उत्तराधिकारी हैं, एक अद्भुत राष्ट्रीय गीत - नेशनल सॉन्ग - के भी। इक़बाल का 'सारे जहां से अच्छा' कम मशहूर न था उन दोनों से, उनसे कम ज़ुबां पर नहीं खेला था, पर आज वह न 'गान' कहलाता है न 'गीत'। तिस पर भी उसके तिलस्म को देखिये; उसकी न हार हुई न जीत, न ही आज उसमें राष्ट्रीय गान से कम है जान, या फिर राष्ट्रीय गीत से कम दिल पर छा जाने वाला संगीत।

आज हम यह कह सकते हैं कि 'इंडिया' और 'भारत' के बीच - उन नामों के बीच नहीं, उन परिकल्पनाओं के बीच - जो द्वन्द उठ सकता था, वह नहीं उठा है। यह हमारे सामूहिक विवेक और व्यावहारिकता की विजय है। 'भारत' और 'इंडिया' दोनों हमारे महामानवी सागर में एक देह बन गए हैं, गुरुदेव के शब्दों में - 'एक देहे होलो लीन'।

गांधीजी ने तीनों नामों का प्रयोग, उपयोग किया था - 'हिंद', 'इंडिया' और 'भारत'। उन्नीस सौ नौ में लिखी उनकी पहली पुस्तक का शीर्षक था 'हिंद स्वराज'। उन्नीस सौ उन्नीस को उन्होंने जिस पत्रिका की स्थापना की थी, उसका नाम उन्होंने रखा : 'यंग इंडिया'। और उन्नीस सौ बयालीस में जिस विशाल आंदोलन का उन्होंने उद्घाटन किया था, वह अंग्रेजी में 'क्विट इंडिया' और हिंदी में 'भारत छोड़ो' के नाम से जाना गया।

भारत-

आज 'भारत' हमारा राष्ट्र है, इंडिया हमारा देश। तो क्या 'राष्ट्र' और 'देश' में कुछ अंतर है? नहीं भी है और है भी, उस ही तरह जैसे घर के एक संदूक और गांव के एक भंडार में अंतर है, बगिया और बागान में अंतर है, जैसे एक सड़क और राजमार्ग में अंतर है, नदी और दरिया में अंतर है, जैसे कि नानी और ननिहाल में अंतर है। उम्मीदों, आशाओं, अभिलाषाओं से ऊपर भी कुछ होता है, जिसमें इंसान अपनी उम्मीदें, आशाएं ही नहीं, पर कुछ और सिर्फ 'रखता' नहीं, पर वहां 'स्थित' करता है। अंग्रेज़ी में एक लफ़्ज़ है : 'रिपोज़'। यू प्लेस योर डिपॉजिट इन अ बैंक, यू ईवन इंवेस्ट देम देयर। यू सेट योर होप्स इन अ क्रिकेट टीम, यू हैव एस्पिरेशंस ऑफ़ अ मॉनसून। यू सेट स्टोर बाय योर कंट्री। बट योर ट्रस्ट, योर कांफिडेंस, योर फ़ेथ यू 'रिपोज़' इन समवन ऑर समथिंग ईवन हायर, मोर मोमेंटस दैन इन योर कंट्री, यू डु दैट इन योर नेशन व्हिच इज़ आलसो अ सिविलाइज़ेशन। अ राष्ट्र इज़ अ नेशन व्हिच इज़ आलसो अ सिविलाइज़ेशन। भारत में - हमारे राष्ट्र में - हम अपना भरोसा 'डिपाजिट' नहीं, 'रिपोज़' करते हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के समय हमारे पूर्वजों ने 'भारत' को अपना लक्ष्य बनाया था और उस पर अपनी दृष्टि लगाई थी।

सिनेमा-जगत समय की अपनी एक पहचान देता है। हिंदी सिनेमा के टाइटिलों पर हम निगाह डालें तो पाएंगे कि आज़ादी से पहले उनमें 'भारत' का बोलबाला था : वीर भारत (1924, 1934), नव भारत (1934), भारत का लाल (1936), जय भारत (1936), भारत की बेटी (1935), भारत की सती (1937)।

इंडिया-

आज 'भारत' हमारा राष्ट्र है, तो 'इंडिया' हमारा देश है, उस ही तरह जैसे हमारा खेत हमारा खेत होता है, हमारा दफ़्तर या हमारी फ़ैक्टरी हमारे काम करने की जगह होती है, हमारी कमाई, रोज़गारी, आमदनी, आजीविका हासिल करने की जगह। आम आदमी 'इंडिया' के नाम से वाकिफ़ है, उसका इस्तेमाल करता है, सहज, सरल, स्वाभाविक। उस ही नाम में वह तरक़्क़ी चाहता है, चाहता है जीत, चाहता है हौसला, उम्मीद, चाहता है वह सब कुछ जिस से देश की ख़ुशहाली में उसको ख़ुद की ख़ुशहाली भी मिल जावै। यह चाहने वाला आदमी वह है, जो रेलगाडियों, बसों, बैलगाडियों में सफ़र करता है। उस ही को अपने दिल-ओ-दिमाग़ में रख कर डॉ आंबेडकर बोले थे 'वी हैव वर्क टु डु'। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और डॉ आंबेडकर के आपस में मतभेद थे, पर वे दोनों आम आदमी की सिफ़त को जानते, पहचानते थे। और उस सिफ़त में वे तब बन रहे रिपब्लिक ऑफ़ इंडिया की सिफ़त को भी देख रहे थे।

जैसे सिनेमा जगत में आज़ादी से पहले 'भारत' का बोलबाला था, आज़ादी के बाद 'इंडिया' की बारी आई: 'स्टोरी ऑफ़ इंडिया' (1945), 'मिस इंडिया' (1957), 'मदर इंडिया' (1957) और - मे आई मेंशन इट? - 'ओह डार्लिंग ये है इंडिया' (1995), जिसका गीत 'आई लव माय इंडिया' देशभर की ज़ुबान पर चढ़ा था। 'इंडिया' अब जम गया है। 'एयर इंडिया' को ही लीजिए। ऑल इंडिया रेडियो को 'आकाशवाणी' कम कहेंगे, और हम बहुत कम कहेंगे, क्रिकेट के संदर्भ में 'भारत वर्सेस वेस्ट इंडीज़'। जब 'इंडिया टुडे' नाम का एक साप्ताहिक प्रांतीय भाषाओं में उभरता है, तब भी वह 'इंडिया' नहीं छोड़ता। हमारे राजनीतिक दलों ने भी 'इंडिया' अपनाया हुआ है। सीपीआई, सीपीआई-एम, सीपीआई-एमएल, आईएनसी, एआईएडीएमके, सबों ने 'इंडिया' से अपना संबंध बनाया हुआ है, सिर्फ भारतीय जनता पार्टी ने वैसा नहीं किया, हालांकि 2004 के चुनाव में उस दल ने 'इंडिया' का अपने एक विवादास्पद नारे में उपयोग ज़रूर किया।

एनआरआई कौन है, सब जानते हैं, 'प्रवासी भारतीय' की पहचान अब भी ज़रा दुर्लभ है। तमिल में, 'इंडिया' का कहीं ज़्यादा उपयोग होता है, बनिस्बत कि 'भारत' का हालांकि तमिल महाकवि सुब्रमण्य का तख़ल्लुस 'भारती' था। जब खेल जगत में 'इंडिया' का नाम आता है, तब हम सब 'इंडिया' सुनते ही उठ खड़े होते हैं, तालियां बजाते हैं। बहुत कम सोचते हैं,

‘इन्हें ‘भारत’ कहना चाहिए था’। देहली का ‘इंडिया गेट’ हमारी प्रभुता और अखंडता का प्रतीक है। ‘मेड इन इंडिया’ की संज्ञा हमारी उत्पादकता और हमारे कृतित्व को दर्शाती है। और हमें यह भी क़ुबूल करना होगा कि हमारे मिज़ो, नगा और तोड़ा सह-नागरिक ख़ुद को ‘इंडियन’ ज़्यादा आसानी से कहेंगे बनिस्बत ‘भारतीय’ या ‘हिंदुस्तानी’। ऐसा नहीं कि उनको भारत के ‘तरु-मूल’ का, उसके ‘रूट्स’ का एहसास नहीं। अवश्य है, लेकिन शाखाएं जड़ों में नहीं बसतीं, जड़े शाखाओं में, वृक्ष के हर अंग में बसती हैं। ब्रांचेस डु नॉट लिव इन रूट्स, रूट्स लिव इन रूट, ट्रंक एंड ब्रांच।

तो यह है ‘इंडिया’ और ‘भारत’ का सिलसिला।

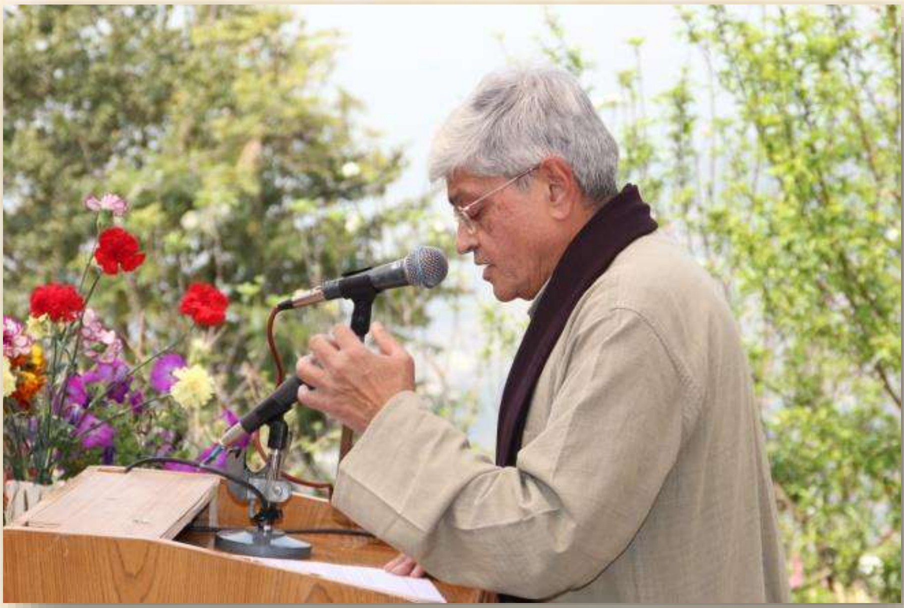

हिंद -

और ‘हिंद’ या ‘हिंदुस्तानी’? वो क्या और कहां है? अगर भारत ‘राष्ट्र’ है, इंडिया ‘देश’, अगर भारत ‘भवन’ है, और इंडिया ‘आवास’, तो हिंद? वह आवास-निवास नहीं, भवन-प्रासाद नहीं। हिंदुस्तान हमारा बसेरा है, वह हमारा अपना घर है। **हिंदुस्तान इज नाट अ प्लेस वी ओन, बट अ प्लेस व्हेर वी लिवA वह उनका भी घर है, जो बेघर हैं।** बल्कि वह उनका ख़ास घर है। हममें इंडिया के लिए इज़्ज़त है, भारत पर गर्व। हिंदुस्तान के लिए हममें वह है, जो कि इंसान को अपने वालिदैन के साथ होता है - बे-फ़र्कुई, मुताबियत। हम जब इंडियन होते हैं, तब नागरिकता के भाव में। हम जब भारतीय होते हैं तो देशभक्ति के भाव में। हम जब हिंदुस्तानी होते हैं, तब दस्तूर, तक़ल्लुफ़, औपचारिकताएं नहीं रहतीं। सिर्फ रहती है घर की साफ़दिली, खुली सोच, सरल बोल। वहां विचारों और अल्फ़ाज़ को ‘फ़ैंसी ड्रेस’ की ज़रूरत नहीं

होती, ना ही 'फ़ॉर्मल ड्रेस' की। वहां सारे मनोभाव, हर जज़्बात की बातें आ जाती हैं - मुहब्बत, भरोसा, अफ़सोस, गुस्सा, फिक्र और हां - तड़प।

ऐसा नहीं कि हमें अपने घर पर फ़ख्र नहीं। है क्यूं नहीं। कितना भी छोटा हो, घर क्यूं झोपड़ी हो, उसमें रहने वाले को उस पर फ़ख्र होता है। हम इंडिया के नागरिक हैं, भारत के निवासी। एक के सिटीज़ंस, दूसरे के रेजिडेंट्स। पर हिंदुस्तान नाम के घर की हम हैं - औलाद। हम जानते हैं, कि हिंद और हिंदुस्तान में एक तिलिस्म है, जिसको इक़बाल ने अपने तराने में, शहीद भगतसिंह और हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन ने और फिर, नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने अपने नारे में अमर बना दिया था।

अगर कोई ऐसा नारा है, जो कि एक पल में हमें देश का सिपाही बना देता है और घर का नौनिहाल भी, तो वह है 'जय हिंद'। वह नारा न हिंदी में है, न उर्दू में। वह है हिंदुस्तान में, हमारे घर को बुलंद बनाने में मग्न।

जब हमारे राष्ट्रीय गान में 'भारत' आता है, और जब प्रदीप के शब्दों को सी. रामचंद्र के सुर में लता मंगेशकर 'ऐ मेरे वतन के लोगो' में गाती हैं, तो वहां 'भारतवासी' आता है। किस भारतवासी का दिल तब पिघल नहीं जाता?

कोई सिख, कोई जाट, मराठा

कोई गुरखा, कोई मद्रासी
सरहद पे मरने वाला
हर वीर था भारतवासी...

और फिर जब उसके बाद के दो जुमले आते हैं, तो किस हिंदुस्तानी का दिल सुन्न नहीं हो जाता?

जो ख़ून गिरा परवत पर,

वो ख़ून था हिंदुस्तानी।

मैं आज प्रदीप को श्रद्धांजलि देना चाहूंगा। उन्होंने 'भारत' और 'हिंदुस्तान' दोनों को जीवित कर दिया है, और एक ऐसी कृति में, जो न नेशनल एंथम है, न नेशनल सॉन्ग, लेकिन एक ऐसा गीत, जो कि हमारे मन में समा गया है। मेरी पीढ़ी के लोगों को 'किस्मत' फिल्म याद होगी, जिसमें प्रदीप जी का गाना आता है, **'दूर हटो ऐ दुनिया वालो, हिंदुस्तान हमारा है।'** और 'जागृति' फिल्म का अमर गान, **'आओ बच्चो तुम्हें दिखाएं झांकी हिंदुस्तान की।'**

मेरी समझ इतिहासविद् की नहीं है। वह राजनीतिविद् की नहीं है। वह किसी तरह के विद्वान की नहीं है। वह एक मामूली गवाह की है। गवाह के नाते इतना कह सकता हूं कि 'इंडिया' और 'भारत' जो नाम हैं, वे लाजिमी हैं, इस मायने में कि वे दो हक़ीक़त को दर्शाते हैं, एक आधुनिक, वर्तमान, समसामयिक, और दूसरी प्राचीन, पुरातन, चिरातन। और एक अर्थ में वे दोनों नाम दो गाड़ियों के हैं, वाहन, चक्रयान के। इनको संविधान सभा में अलग-अलग वाहक-चालक मिले थे, दक्ष, निपुण, विश्वसनीय, अनुभवी। लेकिन वाहन वाहन होता है, सवारी सवारी होती है, जो उस वाहन में जा रहा होता है, यात्री जो है, मुसाफिर जो है, वह वाहन से अलहदा है। वह मुसाफिर है। और मेरे दिल में उस मुसाफिर का नाम 'भारतीय' या 'इंडियन' नहीं। उस मुसाफिर का नाम है 'हिंदुस्तानी'।

उन्नीस सौ बहत्तर में बनी फिल्म 'परिचय' में गुलज़ार साहिब का गाना है **'मुसाफिर हूं यारो, ना घर है ना ठिकाना।'** किशोर कुमार ने उसको गाया है। उसका जुमला, **'मुझे चलते जाना है, बस... चलते जाना...'** आम हिंदुस्तानी के उन ख़्यालों को हुरूफ़ और अल्फ़ाज़ देता है, जो कि उसको जिंदगी के क़दम-क़दम पर आते हैं।

'भारत दैट इज़ इंडिया', जो है, यानी 'भारत' जो है, वह सदैव महान रहेगा - एज़ इन 'मेरा भारत महान'। 'भारत' के नाम में वह है, जो कि उसके शीर्ष के ऊपर एक प्रभामंडल - 'ह¢लो' - को स्थापित कर देता है। यह हमारा सौभाग्य है।

'इंडिया दैट इज़ भारत' जो है, यानी 'इंडिया' जो है, वह कुछ भिन्न है। उसके सिर के ऊपर प्रभामंडल नहीं, पर कई तरह के शिरोवस्त्र हैं, जिनमें आज उल्लेखनीय है - मोटरसाइकिल वाली हेलमेट। इस हेलमेट पहने इंडियन को हर ठोकर और टक्कर के लिए तैयार रहना है, रफ़्तार से आगे बढ़ना है, औरों से आगे, सबसे आगे, औरों से पहले, सबसे पहले, ख़ुद को

और औरों को जोखिम में डालते हुए, जहां चार अंगुली का “h रास्ता मिल जाए, वहां घुस जाना है, बढ़ते जाना है।

लेकिन जो प्यादा है, मोटरसाइकिल या मामूली साइकिल पर भी नहीं, उस हिंदुस्तानी को भी चलते जाना है, चरैवेति... रुकना घातक है। वह जिंदगी की राह पर कभी सीधे चलेगा तो कभी मुड़कर, घबराता हुआ, वह ठोकर भी खाएगा, भूल करेगा, ग़लत मोड़ लेगा, लड़खड़ाएगा। पर फिर चलते जाएगा, वह हिंदुस्तानी। उसके घर में या फिर झोपड़ी या ‘माइग्रेंट वर्कर’ वाले फ़ुटपाथ में चार कोयले की सिगड़ी जलती है, जोरू उस पर कुछ बनाती है।

उसके लिए हमें डॉ. आंबेडकर के लफ़्ज़ याद रखने चाहिए - **‘वी हैव वर्क टु डु।’**

‘वर्क’ से मुझे ‘मेहनत’ का ख़्याल आता है, मुक़ाबलों का। इन मुक़ाबलों में हिमालय की चुनौतियां अहम जगह रखती हैं। इस सभा के मध्य मेरा उनमें जाना ज़रूरी नहीं। लेकिन इतना कहना चाहूंगा कि अगर शेखर पाठक अपनी बढ़िया पत्रिका को ‘पर्वत’ कहलाते, तब कुछ भूल न होती। इक़बाल ने भी तो ‘पर्वत’ का इस्तेमाल किया है... ‘परवत वो सबसे ऊंचा...’। अगर शेखर जी उसके अंग्रेज़ी संस्करण को ‘द माउंटेन’ कहलाएं तो वह भी सही होगा, और अ-हिंदी प्रदेशों में भी उसके पढ़ने वाले लाभान्वित होंगे। लेकिन जब शेखर जी उसको ‘पहाड़’ कहते हैं, तब वह पत्रिका हिंदुस्तानी को भेंटी जाती है, वह हिंदुस्तान की उन अंगुलियों की कड़ी गांठों का परिचय देती है, उन खुरदुरे घुटनों, मज़बूत कोहनियों और तगड़े तलवों का, जो कि साथ ही दिल में ओस के समान नीरव हैं, हृदय में तुषार के समान पवित्र, और मन में हवा समान चलंत। और इन सबके समान दिल का भारी, जेबों का हल्का।

जब हमारे खान खुलते हैं, अपना धन उगलते हैं, जब हमारे कारख़ाने फुर-फुराते हैं, धुआं सुलगाते हैं, जब माल से लदी मालगाड़ियां छुक-छुकाती हैं, लारियां घुर-घुराती हैं, तब भारत उठता है, इंडिया चमकता है, पर हिंदुस्तान, दलितों, आदिवासियों, निष्कासितों, मज़दूरों और आम प्रदूषण-ग्रस्तों का हिंदुस्तान तब सहमता है, सांस रोकता है, सोचता है, मूल प्रश्नों पर हमें पुनर्विचार करने को ललकारता है।

उदाहरणत: मैं पांच, केवल पांच, क़दमों का उल्लेख करता हूं, जो कि अगर इंडिया इंक और भारत सरकार लें तो हिंदुस्तान को सुकून मिलेगा। हाल ही में मैंने अंग्रेज़ी में एक लेख में लिखा था कि हिंदुस्तान के भले के लिए इंडिया शुड टेक स्टर्न एक्शन अगेंस्ट- माफियोसी, हू विद पॉलिटिकल पैट्रोनेज एंड ऑफिशियल कॉनिवेंस इल्लीगली गॉज आउट प्रेशियस मिनरल ओर्स, इन्क्लूडिंग एंड एस्पेशियली कोल, मेकिंग ऑब्सीन प्रॉफिट्स, इन ‘ब्लैक मनी’ व्हिच दैन फ़ाइंड देयर वे इनटू इलेक्शन कैंपेन एक्सपेंसेस।

- मर्डरर्स हू हाउंड एंड हंट व्हिसल-ब्लोअर्स, बोथ ऑफिशियल एंड नॉन-ऑफिशियल, साइलेंसिंग ब्रेव मेन एंड वुमेन हू हैव आस्क्ड इनकन्वीनिएंट क्वेश्चंस, विद डेथ।

-     मैन्युफेक्चरिंग हाउसेस - व्हिच, हैविंग ऑब्टेन्ड लाइसेंसेज़ एंड इन्फ्रा-स्ट्रक्चर अंडर अवर लिबरेलाइज़्ड प्रोसिजर्स, दैन गो ऑन टु यूज़ लैंड, वाटर, इलेक्ट्रिक पॉवर एंड फ़्यूल डैज़लिंगली अबव देयर लिसिट रिक्वायरमेंट्स, विद नो क्वेंश्चंस आस्क्ड।

-     मिसकन्सीवड पॉलिसी अप्रोचेस दैट डिस्काउंट द कैलोरी नॉर्म इन कैलकुलेटिंग पॉवर्टी, देयरबाय मेकिंग अ मॉकरी ऑफ़ पॉवर्टी एलीविएशन इन अ सिचुएशन व्हेयर अ ह्यूज मेजोरिटी ऑफ़ द रूरल पॉपुलेशन इज़ शॉकिंगली कैलोरी-डेफिशिएंट।

-   मिस-गवर्नेंस इन द शेप ऑफ़ 'वाइडस्प्रेड इनएफिशिएंसी एंड ग्रॉस मिसमैनेजमेंट ऑफ़ रिसोर्सेस', एज़ प्रेसिडेंट सर्वपल्ली राधाकृष्णन टर्म्ड इट, इन द रैंक्स ऑफ़ द एडमिनिस्ट्रेशन, एट द सेंटर, स्टेट्स एंड लोकल बॉडीज़, बाय हीडिंग रिकमेंडेशन ऑफ़ द एडमिनिस्ट्रेटिव रिफ़ॉर्म्स कमीशन सेट अब बाय यूपीए इटसेल्फ़।

जब तक इंडिया इंक ज़मीन, खनिज पदार्थों, पानी, बिजली और तेल का बेलगाम इस्तेमाल करती रहेगी, तब तक भारत भ्रम में रहेगा और हिंदुस्तान अपने अंदर ही अंदर सिसकियां लेते रहेगा। अगर तरक़्क़ुई को साझा होना है, आमदनी को एकतरफ़ा नहीं, बहुमुखी और व्यापक बनना है तो इंडिया को हिंदुस्तान के गले लगना होगा। इंडिया अपने को बे-उम्र नौजवान, हिंदुस्तान को एक बेइंतहा खान और भारत को महान सोचता है तो वह ग़लत सोचता है। अहमदनगर जेल में तरुण तपस्वी जवाहरलाल नेहरू ने 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' लिखी थी। भारत की खोज अमर है, इज़हार-ए-हिंद अपना रास्ता ढूंढ़ रहा है।

भारत, इंडिया और हिंदुस्तान - तीन नाम सही, तीन सत्य, तीन हक़ीक़त। हमें तीनों की पहचान ज़रूरी है, तीनों की मदद ज़रूरी है। एक बिना दूसरा अपूर्ण है, दूसरे के बिना तीसरा अधूरा। एक के उपासक दूसरे को, दूसरे के तीसरे को ना भूलें, यही हमारे संविधान का संदेश है, और यही हमारा कर्तव्य है। भारत पर गर्व, इंडिया में उम्मीद निर्भर है हिंदुस्तान की और हमारी सिफ़त की सही पहचान पर।

जय हिन्द!

***

चतुर्थ बी डी पाण्डे स्मृति व्याख्यान- 13 अप्रैल, 2013

****सर मार्क टली****

अरुण सिंहजी, ललितजी, पाण्डे परिवार के सदस्यों,मेरे पुराने-पुराने दोस्तों,

आप सब लोगों को धन्यवाद! मैं ख़ास धन्यवाद अरुण सिंहजी और ललित को देना चाहता हूँ क्योंकि उन्होंने इस ख़ास मौक़े पर भाषण देने के लिए मुझे यहाँ बुलाया।

जहाँ तक मुझे बी.डी. पाण्डे के बारे में याद है वे एक महान पुरुष और अच्छे सिविल सर्वेंट थे। आजकल ऐसे सिविल सर्वेन्ट्स की कितनी ज्यादा ज़रूरत है! इसलिए यह उचित है कि हम यहाँ उन्हें स्मरण करते हैं। मैं इस मौक़े पर यहाँ आकर बहुत खुश हूँ।

मैं आपसे माफ़ी माँगना चाहता हूँ। मुझे थोड़ा डर सा लग रहा है। अरुण सिंह जी ने जब मुझे यहाँ बुलाया तब उन्होंने बताया कि यह एक लेक्चर है जो हिन्दी में देना चाहिये। मैंने कहा मेरी हिन्दी इतनी अच्छी नहीं है लेकिन मैं हिन्दी में बोलने की कोशिश करूँगा। इसलिये सबसे पहले जो गलतियाँ होंगी उनके लिये माफ़ी माँगना चाहता हूँ।

बी.डी. पाण्डे साहब एक महान सिविल सर्वेंट थे इसलिये मैंने सोचा कि शासन के सम्बन्ध में, भारत में शासन की क्या कमजोरी है और क्या मज़बूती है, इस बारे में बात करनी चाहिये।

मैं हिन्दी के बारे में कुछ बातें बोलना चाहता हूँ क्योंकि मैं सोचता हूँ कि हिन्दी एक बहुत ख़ास विषय है। इस देश में हिन्दी की जो स्थिति है वह इस देश की थोड़ी सी कमज़ोरी का सबूत है। मेरा यह ख़याल है भारत में लोग हिन्दी और भारतीय संस्कृति को शासन में

इज्ज़त नहीं दे रहे हैं। आपका शासन अभी तक अंग्रेज़ी की बुनियाद पर है और जो अंग्रेज़ी प्रणाली थी वह इस देश में अभी तक चलती है। इस देश में अंग्रेज़ी को जो इज्ज़त दी जा रही है उससे नुकसान पहुँच रहा है। यह मैं अपने अनुभव से महसूस करता हूँ।

मेरा जन्म कलकत्ता में हुआ था। मेरे माँ-बाप अंग्रेज़ थे। उनका यह इरादा था और उन्होंने बहुत कोशिश की कि हमारे बच्चे (हम 6 बच्चे थे) बिल्कुल अंग्रेज़ लगने चाहिये। इनके ऊपर हिन्दुस्तान का असर नहीं पड़ना चाहिये। हमें हिन्दी या कोई अन्य भारतीय भाषा बोलने की सख्त मनाही थी। मेरे ऊपर निगरानी रखने के लिये नैनी को, जो एक सख्त औरत थी, रखा गया था। उसका पहला काम यह देखना था कि हम नौकरों से हिन्दी या बंगाली में एक भी लफ्ज़ नहीं सुनते हैं। एक बार मैं ड्राईवर के साथ बैठा था और वह मुझे ‘एक, दो, तीन’ सिखा रहा था। तभी अचानक नैनी पहुँच गयी और बहुत गुस्सा हुई। नैनी ने मुझे थप्पड़ मारा और बोली कि यह नौकरों की ज़ुबान है, आपकी नहीं। इसलिये मैंने बचपन में हिन्दी सीखने का मौक़ा खो दिया।

जब मैं दुबारा यहाँ आया मैंने हिन्दी सीखने की कोशिश की लेकिन फॉर्मल एजुकेशन के लिये टाइम नहीं मिला। फिर भी मैंने कुछ लेसन ले लिया और किसी से कुछ सीख लिया। लेकिन एक बड़ी दिक्कत सामने थी कि बोलने का मौक़ा ही नहीं मिला। हमेशा मैं जब किसी से हिन्दी में सवाल पूछता था जवाब अंग्रेज़ी में मिलता था। फ्रांस में अगर आप किसी से अंग्रेज़ी में सवाल पूछते हैं तो वह ज़वाब ही नहीं देगा लेकिन यहाँ लोग अपनी ज़ुबान में ज़वाब नहीं देते! यह इस बात का सबूत है कि हिंदुस्तान में लोग अपनी भाषाओं को काफी इज्ज़त नहीं दे रहे हैं।

इसी के बारे में एक और कहानी आपको बताऊँगा। मैं एक बार 'नवभारत टाइम्स' के एडिटर के पास शिकायत करने गया था कि उनके अखबार ने बीबीसी के बारे में जो खबर छापी वह एकदम बकवास है और बिना किसी सबूत के छापी है। उसने मुझसे कहा था, "आप क्यों इतना उत्तेजित होते हैं? यह सिर्फ हिन्दी न्यूज़-पेपर है।" अपने न्यूज़-पेपर के लिये इतनी कम इज्ज़त क्योंकि वह हिन्दी में है! मेरे ख़याल से इसका सबक यह है कि भारत में क्योंकि अपनी ज़ुबान की इज्ज़त नहीं करते हैं, शायद इसीलिए भारतीय परम्पराओं, संस्कृति वगैरह की भी इज्ज़त नहीं करते हैं।

इसका शासन से क्या सम्बन्ध है? मैं यहाँ से शुरुआत करना चाहता हूँ कि अगर आप अखबार पढ़ते हैं या टीवी देखते हैं तो किस विषय के बारे में पढ़ेंगे? आप पढ़ेंगे भ्रष्टाचार के बारे में, ख़राब नौकरशाही के बारे में, आर्थिक-प्रगति की सुस्त रफ़्तार के बारे में, पुलिस के ज़ुल्म के बारे में, औरतों की सुरक्षा के बारे में- ऐसे विषयों के बारे में आप पढ़ते हैं। आप सोचेंगे कि भारत की हालत बहुत ख़राब है, भविष्य बहुत ख़राब है और भविष्य के लिये उम्मीद नहीं है। लेकिन मेरा ख़याल है कि इस बारे में निराशा का कोई कारण नहीं है। आप, जो अख़बार पढ़ते हैं या हम, जो कि जर्नलिस्ट हैं, यह भूल जाते हैं कि आज़ादी के बाद भारत की क्या प्रगति हुई है। आप सोचिये कि जब बी.डी. पाण्डे सिविल सर्वेंट बने उस वक़्त भारत में कोलोनियल-रूल था। अब भारत आज़ाद, बिल्कुल आज़ाद है।

भारत को जिस समय आज़ादी मिली चीन और भारत दुनिया में सबसे गरीब देश थे। अब देख लीजिये कि चीन और भारत के स्टेटस कहाँ हैं। आप सोच लीजिये कि भारत की

आबादी कितनी बढ़ी लेकिन कितने प्रतिशत साक्षर हैं। कितने गरीबी की रेखा से ऊपर आ गये! और ज्यादा प्रतिशत ऊपर आने चाहिये लेकिन बहुत सारे लोग गरीबी की रेखा से ऊपर उठे हैं। आप देख लीजिये भारत ने कितनी प्रगति की है और दुनिया में लोग सोच रहे हैं कि अगले 25 सालों में भारत बहुत महान आर्थिक शक्ति हो जायेगा। इसलिये निराशा के लिये कोई कारण नहीं है। लेकिन यह भी सच है, कोई संदेह नहीं है कि भारत ने अपनी क्षमता का पूरा इस्तेमाल नहीं किया, अभी और क्षमता इस्तेमाल करने के लिये जगह है।

लोग कभी-कभी भारत की चीन से तुलना करते हैं। मेरा ख़याल है कि यह ग़लत है क्योंकि लोग भूल जाते हैं कि चीन ने उसकी प्रगति के लिये कैसी क़ीमत चुकाई। आप सोच लीजिये कि चीन में कितना जुल्म हुआ 'कल्चरल-रेवोलुशन' में और कितना जुल्म हुआ 'ग्रेट-लीप फॉरवर्ड' में। भारत में ऐसा जुल्म कभी नहीं हुआ। भारत में एक इमरजेंसी हुई थी, सिर्फ़ 18 महीने के लिये और उसके बाद डेमोक्रेसी शायद अपने आप से वापस आ गयी। दूसरी बात यह है कि इमरजेंसी में वैसा जुल्म नहीं हुआ जैसा चीन में कल्चरल-रेवोलुशन के दौरान हुआ था। क्या कारण है, जैसा कि अमर्त्य सेन ने कहा था, भारत में आज़ादी के बाद फेमिन या भुखमरी नहीं हुई? अमर्त्य सेन कहते हैं, "क्योंकि भारत एक डेमोक्रेसी है और डेमोक्रेसी में लोग इतना जुल्म, फेमिन बर्दाश्त नहीं करेंगे। इसलिए चीन ने क़ीमत चुकाई है और यह बहुत अच्छा है कि भारत ने चीन का रास्ता नहीं अपनाया। इसलिए जब लोग तुलना करते हैं तो मेरे ख़याल से यह ग़लत है। भारत को चीन को नहीं देखना चाहिये कि हमें चीन के रास्ते पर जाना है। ऐसे ही भारत को अमेरिका, ब्रिटेन या किसी और देश को भी नहीं देखना चाहिये। मेरे विचार से भारत को प्रगति के लिये अपने रास्ते पर चलना चाहिये।

भारत ने किन कारणों से अपनी क्षमता का पूरा इस्तेमाल नहीं किया? मेरा ख़याल है और मैं इसके बारे में किताब लिख चूका हूँ कि एक ख़ास कारण है, शासन। भारत की अच्छाई या सफलता के बारे में आप चाहे कुछ भी बोलें, आप यह नहीं बोल सकते कि भारत में सुशासन है। यह बहुत ज़रूरी चीज़ है क्योंकि बिना सुशासन के पूरी क्षमता का इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं। वेस्टेज बहुत होती है।

क्यों सुशासन नहीं है इस देश में? मैं आपको दो-तीन सुझाव देना चाहता हूँ। एक सुझाव, जैसा मैंने अभी कहा था, अंग्रेजों के जाने के बाद शासन में कुछ ज्यादा, ख़ास, महत्वपूर्ण संशोधन या सुधार नहीं लाये गये। सरकार अभी तक उसी आधार पर चलती है जो अंग्रेज़ छोड़ कर गये थे। वही माहौल, अंग्रेज़-राज का माहौल, आज़ाद भारत के शासन में है। 'माहौल' का क्या मतलब है? मतलब यह है कि अंग्रेज़-शासन का क्या इरादा था? कानून-व्यवस्था और लोगों को नियंत्रण में रखना। अंग्रेज़-शासन में यह नंबर वन प्रायोरिटी थी, विकास बहुत नीचे था। इसलिये भारत आज़ादी मिलने के समय बहुत गरीब देश था। लेकिन आजाद भारत में विकास, लोकतंत्र और जनसेवा- ये सबसे ज़रूरी चीजें हैं। लेकिन सरकार के माहौल से सरकार के रवैये से हम यह सोचते हैं कि यह पुरानी कोलोनियल सरकार है। एक और मिसाल है इस देश की पुलिस। आप रोज़ टीवी पर देखते हैं कि पुलिस क्या जुल्म करती है। जब जिली और मैं इंग्लैंड में थे, एक बार मैं उसकी माँ के साथ बैठकर एनडीटीवी देख रहा था जिसमें एक पुलिसवाला किसी ट्रक ड्राईवर को बुरी तरह से मार रहा था क्योंकि उसने पुलिसवालों को घूँस नहीं दी थी। जिली की माँ ने कहा था कि यह किस किस्म का देश है जिसमें आप रहते हैं! यह है भारत की पुलिस-फ़ोर्स! और यह आदत कहाँ से सीखी? अंग्रेज़-राज के ज़माने से। मैं रोज़ सवाल पूछता हूँ कि भारत की पुलिस क्यों फौज की वर्दी पहन

रही है? पुलिस का काम पब्लिक की सेवा है, जबकि फौज का दुश्मन से लड़ना। अगर एक आदमी फौज की वर्दी में रह रहा है त क्या मतलब है? वे सोचेंगे कि हमें दुश्मन का सामना करना है। किस 'दुश्मन' का? पब्लिक का। यह एक मिसाल है।

दूसरा सुधार जो लाना चाहिये लेकिन नहीं लाया गया यह कि इस देश में नियम इतने जटिल ढंग से लिखे गये हैं कि लोग समझ ही नहीं सकते कि यह है क्या। इसलिये ब्यूरोक्रेसी, पेट्इ ब्यूरोक्रेसी के लोग पब्लिक को धोखा दे सकते हैं। वे बोलेंगे कि नहीं-नहीं, यह आपके लिये नहीं है क्योंकि पब्लिक समझ नहीं सकती। एक मिसाल है कि मुझे इनकम-टैक्स का फॉर्म मिला जिसके ऊपर लिख दिया 'सरल' इनकम-टैक्स फॉर्म। लेकिन पंद्रह जगह पर दस्तखत माँगे गये थे! कैसे सरल हो सकता है अगर पंद्रह दस्तखत माँगेंगे?

एक और चीज़ है जो मेरे विचार से ग़लत हो रहा है, इस देश में, वह है दखलन्दाज़ी। इस देश में राजनेता ब्यूरोक्रेसी के काम में दखल देते हैं, जूडीश्यरी ब्यूरोक्रेसी के काम में दखलन्दाज़ी करती है और कभी-कभी ब्यूरोक्रेसी राजनेताओं के काम में दख़ल करती है। जो रेखा रखनी चाहिये वह नहीं रखते हैं। यह भी एक ग़लती है जो ठीक करनी चाहिये। इस वास्ते मेरा ख़याल है शासन बहुत अच्छा नहीं है जितना होना चाहिये। भारत में विश्व-बैंक में काम कर रहे एक अर्थशास्त्री ने उल्लेख किया है, अंग्रेज़ी में, कि "**इंडिया इस नॉट अ फेलिंग स्टेट बट अ फ्लेलिंग स्टेट** (*India is not a failing state but a flailing state*)। इसका मतलब उसने बताया कि जैसे एक शरीर है जिसका दिमाग है, हाथ हैं, पैर हैं और सब कुछ है।

लेकिन जब दिमाग हाथ को हुक्म भेजता है तो हाथ नहीं मानता है और जब पैर को भेजता है तो पैर नहीं मानता। मतलब यह है कि हाथ काम नहीं कर सकते हैं और पैर आगे नहीं बढ़ सकते हैं। यह है भारत की कमजोरी, उसने कहा था। मिसाल के तौर पर जब सरकार बोलती है कि बुजुर्गों को पेंशन मिलनी चाहिये तो कितने बुजुर्गों को पेंशन मिल पाती है? कितने ब्यूरोक्रेट कोशिश करते हैं कि गाँव जाकर इस बारे में बुजुर्गों को जानकारी दें, मदद करें ताकि उन्हें पेंशन मिल सके? अगर आप गाँव के किसी बुजुर्ग से पूछते हैं कि पेंशन मिलती है तो वह बोलेगा, “नहीं भाई, कोशिश की थी लेकिन सफलता नहीं मिली।” इसलिये मेरा ख़याल है कि यह तो बड़ी अच्छी तस्वीर है भारत के बारे में कि ऐसा बदन जिसके हाथ या पैर आदेश नहीं मानते हैं। मैं एक-दो और मिसाल देना चाहता हूँ। पहली यह कि एक रेखा स्थापित करनी चाहिये तथा पुलिस और ब्यूरोक्रेसी को ज़रूरी आज़ादी देनी चाहिये। आप जानते हैं कि सीबीआई सरकार के हाथ में है। सीबीआई अगर सेंट्रल ब्यूरो ऑफ़ इन्वेस्टीगेशन है, आजाद एजेंसी है क्योंकि कभी-कभी सरकार की ग़लती पर, मंत्रीजी की ग़लती पर इन्वेस्टीगेशन करनी पड़ती है। अगर सरकार के हाथ में है तो कैसे इन्वेस्टीगेशन कर सकती है? इतनी बुरी स्थिति है! एक बार मैंने सुना कि सीबीआई के एक भूतपूर्व डायरेक्टर ने पब्लिक के सामने कहा था, अंग्रेज़ी में बोलूँगा, “ **सीबीआई इज नथिंग लेस देन एन इंस्ट्रुमेंट ऑफ़ ओप्रेसन इन द हैंड्स ऑफ़ गवर्नमेंट।”** (CBI is nothing less than an instrument of oppression in the hands of the government)।

अगर आप आज़ादी की रेखा रखते हैं, अगर आप सीबीआई को बोलते हैं कि सीबीआई बिल्कुल आज़ाद है, किसी से आदेश नहीं लेना चाहिये, तब तो ऐसी स्थिति नहीं हो सकती है।

ब्यूरोक्रेसी के लिये भी आज़ादी की ज़रूरत है। अगर ब्यूरोक्रेसी में आज़ादी मिलती है तब तो ट्रान्सफर की जो बकवास होती है वह नहीं हो सकती है क्योंकि नियम के मुताबिक ट्रान्सफर हो जायेगा और अगर कोई ग़लत तरीके से ट्रान्सफर होता है तो वह शिकायत करेगा। लेकिन आजकल क्या होता है? हमारी एक मित्र दक्षिण भारत में डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट थी। हमने उसके बारे में एक फ़िल्म बनायी, इंग्लैंड में लोगों को दिखाने के लिये कि एक डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट की ज़िन्दगी कैसी है। उसने मुझे बताया कि मैं यहाँ छः महीने पहले ही आयी हूँ और अगले छः महीने तक नहीं रहूंगी। मैंने पूछा कि क्यों ट्रान्सफर हो जायेगा तो उसने कहा कि मंत्रीजी से जुड़ा एक आदमी मुझसे ग़लत या फर्जी हिसाब पर दस्तख़त करने को कहेगा। मैंने कहा कि आप स्टेट-सेक्रेटरी के पास जाकर क्यों नहीं शिकायत करतीं, वह आपकी रक्षा करेंगे। उसने कहा कि अगर मैं स्टेट-सेक्रेटरी के पास जाओंगी तो वह ज़रूर यही कहेंगे कि आजकल का माहौल तो आप जानती ही हैं। मैं कुछ नहीं कर सकता। अगर इस बार आपका ट्रान्सफर नहीं हुआ तो अगली बार हो जायेगा। अगर सिविल सर्विस के लिये आज़ादी है तब तो ऐसी चीज़ नहीं हो सकती है।

मेरा ख़याल है कि लोग इस बात को ठीक से नहीं समझते हैं कि अगर शासन ठीक तरह से नहीं चलता है तो चाहे कितने भी ईमानदार लोग हों, वे अपनी क्षमता का पूरा इस्तेमाल नहीं कर पायेंगे। अगर बीबीसी बिल्कुल बेकार आर्गेनाइजेशन होता तो आप कितनी भी कोशिश कीजिये मेरा नाम नहीं सुनते। कभी-कभी लोग बोलते हैं कि यह आदमी दोषी है लेकिन वे नहीं समझते हैं कि अगर सिस्टम ही खराब है तो कोई अपना काम ठीक से कैसे कर सकता है?

हम सब बोलते हैं कि सरकार दोषी है, इस देश में जो भी चीज़ ख़राब है उसमें सरकार का क़सूर है। लेकिन यह सही नहीं है। मेरे ख़याल से भारत में पब्लिक अभी तक अंग्रेज़ सरकार के बारे में सोचती है और अंग्रेज़ सरकार का नाम 'माय-बाप' सरकार था। इसलिये लोग सोचते हैं कि सब-कुछ सरकार का काम है और हमारी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। लेकिन पब्लिक की ज़िम्मेदारी बहुत है। आज सुबह ख़ुशकिस्मती से हामिद अंसारी जी का पहले दिया हुआ बी.डी. पाण्डे स्मृति भाषण पढ़ा। उसमें लिखा है, **"सरकार अपनी पूरी कोशिश कर ले, सरकारी अफसर, मंत्री अपनी पूरी कोशिश कर लें, लेकिन जनता का जब तक पूरा सहयोग नहीं है, तब तक कोई भी स्कीम नहीं चल सकती, कम से कम पूरी रफ़्तार से नहीं चल सकती। ठीक है आप गाड़ी दूसरे गियर में 15-20 किलोमीटर की रफ़्तार से चलाइये मगर उससे अपने देश का काम पूरा नहीं हो सकता है। जब तक पब्लिक सरकार को सहयोग**

नहीं देगी, सरकार के काम में अपनी भागीदारी नहीं करेगी तब तक सरकार पूरी सफलता नहीं प्राप्त करेगी।"

बहुत लोगों को, मुझे भी, बुरी आदत है कि हम लोग अखबार पढ़ते हैं और बोलते हैं कि अरे! यह सरकार बेकार है। हम एक कहानी सुनते हैं कि एक आदमी ने घूँस ले लिया, भ्रष्टाचार किया तो हम बोलते हैं कि सब भ्रष्ट है। अगर आप गाँव या शहर में किसी से पूछते हैं कि वह पॉलिटिशियन के बारे में क्या सोचता है तो जवाब मिलेगा कि ''सब चोर हैं''। 'सब चोर' ठीक नहीं है। यह सच है कि अपनी ज़िम्मेदारी के बारे में भी सोचना है। सबसे पहली ज़िम्मेदारी यह है कि अगर आदमी चोर है तो आप उसे क्यों बर्दाश्त करते हैं? क्यों आप उसे वोट दे रहे हैं? और भी बहुत कुछ ज़िम्मेदारी है। मेरा ख़याल है कि भारत में पब्लिक को सोचना चाहिये कि भारत-सरकार या राज्य-सरकार के साथ हम किस तरह सहयोग कर सकते हैं जिससे उसकी रफ़्तार तेज़ हो सकेगी।

एक और बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूँ, भारत में लोगों की यह आदत है कि वे आपस में लड़ते हैं। मुझे नहीं मालूम कि इसका क्या कारण है। भारत में भ्रष्टाचार के विरोध में आन्दोलन शुरू हुआ, बहुत सारे लोग कह रहे थे कि अब भ्रष्टाचार को और बर्दाश्त नहीं करेंगे। लेकिन दो-तीन महीने बाद आन्दोलन में झगड़ा हो गया और अब आन्दोलन का नाम भी नहीं सुनाई देता है! राजनीति में क्या होता है? आप एक दिन कांग्रेस में आये। जब ज्यादा फायदा नहीं होता है, नाम नहीं होता है या मंत्री पद नहीं मिलता? "अब मैं मुलायम सिंह के पास जाऊँगा।" "मैं बीजेपी में जाऊँगा।" जैसे एक बार अरुण सिंह ने मुझे कहा था कि संसद में जयपाल रेड्डी ने उनके सामने उंगली उठाई और कहा कि राजीव गांधी चोर है। अभी जयपाल रेड्डी कहाँ हैं? इसके क्या मतलब हैं? अभी वह शायद सोचते हैं कि राजीव गांधी ईमानदार आदमी थे! किसी कारण से, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि क्या कारण है, लोग अपने बारे में ज्यादा सोचते हैं और सहयोग के बारे में इतना नहीं सोचते।

लेकिन अंत में, मैं कहना चाहता हूँ, जैसा मैंने पहले कहा कि आज के भारत के माहौल को और तरह-तरह की जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ता है उन्हें देखकर लोगों के मन में भारत के परिदृश्य और भविष्य के बारे में निराशा है। लेकिन निराशा का कोई कारण नहीं है। मेरा ख़याल है कि भारत के अन्दर जो क्षमता है उसका भारत तभी पूरा इस्तेमाल कर सकता है जब भारत के लोग इकट्ठा होकर काम करने लगें। सोचने लगें कि जो मुसीबत आज है उसमें हमारा भी क़सूर है और पक्का इरादा कर लें कि हम भ्रष्टाचार बर्दाश्त नहीं करेंगे। जो भ्रष्ट आदमी है उसे वोट नहीं देंगे। हर हाल में भारत के लोग एक होकर खड़े रहें। जब भारत अपनी क्षमता का पूरा इस्तेमाल करने लगेगा तब उसके भविष्य की सीमा नहीं। स्पष्ट है कि तब भारत दुनिया में एक बड़ी ताकत बन सकता है लेकिन मेरा ख़याल है कि यह तब तक नहीं हो पायेगा जब तक कि भारत के लोग अपनी संस्कृति और परम्परा को काफ़ी इज्ज़त नहीं देते और अंग्रेज़ संस्कृति की तरफ देखना बंद नहीं करते। हमें इंग्लैंड या अमेरिका की तरफ़ नहीं देखना है क्योंकि भारत, भारत है और भारत को भारत की संस्कृति पर आगे बढ़ना चाहिये। यह मेरा ख़याल है। भारत की संस्कृति में सब कुछ है।

आज जो भारत की कमजोरी है उसे समझने के लिये भी भारत की संस्कृति से सीख सकते हैं क्योंकि आप जानते हैं कि 'भगवद्गीता' में क्या सन्देश है। सन्देश यह है कि आपको अपने लिये काम नहीं करना चाहिये बल्कि पब्लिक की सेवा के लिये काम करना चाहिये या अपनी ड्यूटी के लिये काम करना चाहिये। अगर आप इस आधार पर काम करते हैं, इस आधार पर आगे जाते हैं तब तो भारत के लिये बहुत उम्मीद है। आप सोचिये कि पूरी दुनिया में उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में सबसे मशहूर

जनसेवक कौन था? महात्मा गांधी। महात्मा गांधी भारतीय नागरिक थे। महात्मा गांधी की 'बाइबिल', उन्होंने बार-बार कहा था, 'गीता' है। 'भगवद्गीता का सन्देश' मेरे दोस्त डॉ. कर्ण सिंह ने यहाँ आकर प्रस्तुत किया।

आप लोगों ने मुझे भाषण देने का मौक़ा दिया। मैंने सोचा कि ईमानदारी से बात कहनी है जो मैं बोलना चाहता हूँ। अगर आप सोचते हैं कि मैंने ग़लत बोल दिया तो मैं माफ़ी माँगना चाहता हूँ। मैं यह नहीं सोचता कि मैं हमेशा ठीक ही बोलता हूँ क्योंकि कोई भी आदमी नहीं है जो कभी-कभी ग़लत नहीं बोलता है।

लेकिन मेरा भरोसा है कि यह महान देश आगे बढ़ सकता है और मेरी राय यह है कि अभी तक आप अपनी क्षमता का पूरा इस्तेमाल नहीं करते हैं।

धन्यवाद।

***

** श्री जावेद अख्तर**

“समाज के आईने में सिनेमा
और
सिनेमा के आईने में आज का समाज”

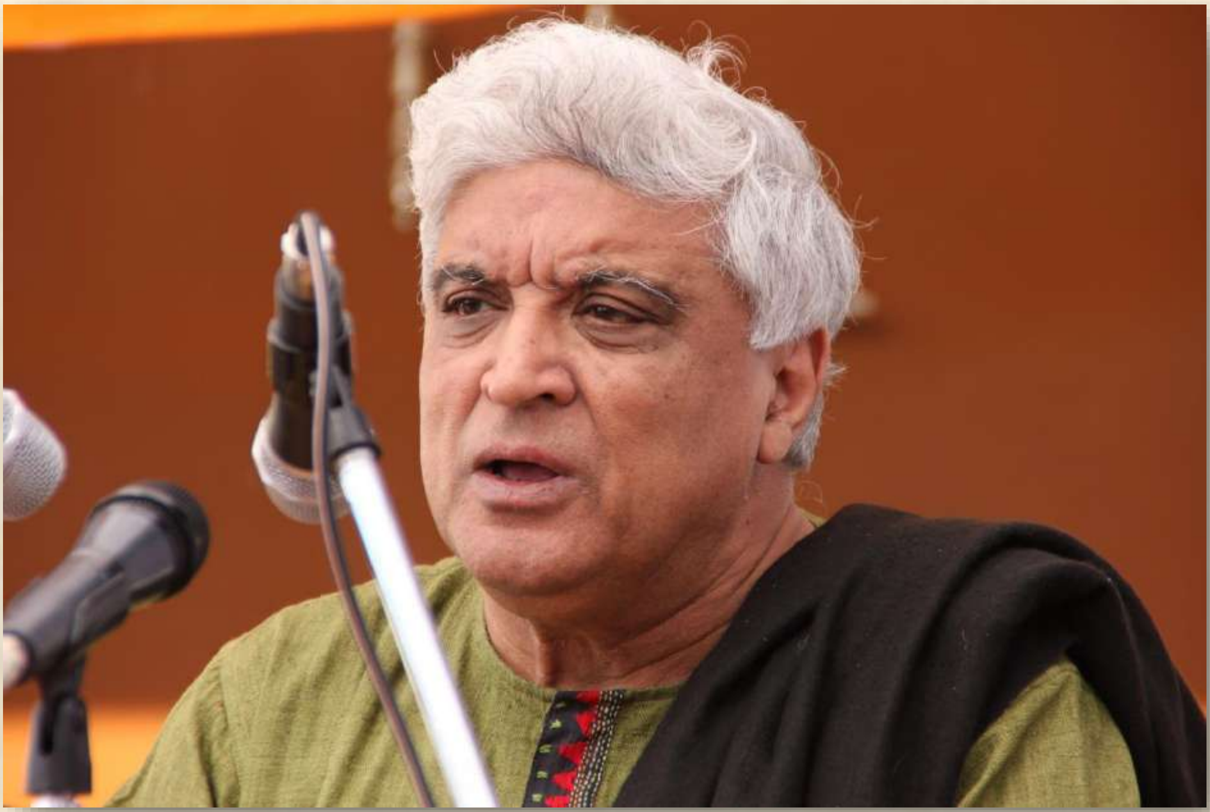

माननीय सुमनजी, ललितजी, देवियों और सज्जनों,

सबसे पहले मैं ललितजी का शुक्रिया कहना चाहूँगा। उन्होंने इतने अच्छे शब्दों में, इतनी मुहब्बत और इतनी डिटेल में मेरा इंट्रोडक्शन दिया। बहुत ख़ुशी हुई। थोड़ा डर भी लगा। डर इसलिये लगा कि आमतौर से किसी आदमी की इतनी तारीफ़ कन्डोलेन्स-मीटिंग में ही होती है। चलिये कोई बात नहीं।

मैं यहाँ पहली बार हाज़िर हुआ हूँ। अल्मोड़ा का नाम तो बचपन से ही सुना है। एक बार बारह-तेरह साल की उम्र में रानीखेत आया था। जब हम जा रहे थे तो लोगों ने दिखाया था कि वह रोड अल्मोड़ा जाती है। मगर मुझे इतने साल लग गये 'वह रोड' पर आने में! आकर ख़ुशी हुई। इतने से वक्त में इतने सारे अच्छे लोगों से भेंट हुई, एक बड़े शहर में तो दस साल में भी नहीं हो पाता। लेकिन मुझे थोड़ी हैरत भी हुई। इसलिये कि आजकल भाषणों की रुत चल रही है। भाषण आसमान से बरस रहे हैं, पेड़ों पर लग रहे हैं, ज़मीन पर उग रहे हैं, हवाओं में घुले हुए हैं, नदी में बह रहे हैं। तो फिर एक आदमी बुलाकर उससे भी सुनना! यह थोड़ा मुश्किल काम कर रहे हैं आप लोग। लेकिन चलिये, ठीक है। जहाँ आजकल देश में भाषणों का एक महासागर है, एक बाल्टी पानी मैं भी डाल देता हूँ।

आज का विषय बड़ा रोचक है, इसलिए कि हम हिन्दुस्तानी लोग फ़िल्में बहुत देखते हैं। हम लोगों को फिल्मों से मुहब्बत है और जितनी मुहब्बत से हम फ़िल्में देखते हैं वह एक

मिसाल है। दुनिया में जब मूवी कैमरा बना और जब फ़िल्में बननी शुरू हुईं उसके सात वर्ष के अन्दर हिन्दुस्तान में फिल्म आ गयी। आज भारत दुनिया का सबसे बड़ा फिल्म मेकिंग कंट्री है। **हम एक साल में अलग-अलग भाषाओं में कुल मिलाकर नौ सौ से ऊपर फ़िल्में बनाते हैं**। यानी हर आठ घंटे में एक फुल लेंथ फीचर-फिल्म इंडिया में बनती है! वी लव फिल्म्स। बड़ी हैरत की बात यह है कि फिल्म, जो आम आदमी की ज़िन्दगी में इतनी इम्पोर्टेन्ट है, अक्सर वही सोर्स ऑफ़ एंटरटेनमेंट या इन्स्पिरेशन है। लेकिन हमारे देश के इन्टेलक्चुअल्स/सोश्योलोजिस्ट्स सोश्यो-इकॉनोमिक या सोश्यो-पॉलिटिकल चेंजेज की स्टडी कर रहे लोगों ने कभी इस पर ध्यान नहीं दिया और इसके महत्त्व को समझा नहीं। अब धीरे-धीरे थोड़ा परिवर्तन आया है। पहले तो इस बात पर गर्व होता था कि भाई, हम तो हिन्दी फ़िल्में देखते नहीं। अब सरकते-सरकते यहाँ तक आ गये हैं कि एक्चुअली मेरी वाइफ को हिन्दी फ़िल्में बहुत पसंद हैं तो कभी-कभी मैं भी साथ बैठकर देख लेता हूँ। इससे यह मालूम पड़ता है कि फिल्मों के अलावा वाइफ के बारे में भी राय कोई ख़ास अच्छी नहीं है।

यह एक बड़ा फिनॉमिना है। देखिये, आर्ट भले ही कमर्शियल हो या फाइन-आर्ट हो, कोई भी कला जिसमें शब्द हैं- नॉवेल, शार्ट-स्टोरी, ड्रामा, फिल्म- ये सिर्फ एंटरटेनमेंट नहीं है। यही फ़र्क है कला और सर्कस में। सर्कस आपको एंटरटेन करता है। कला को भी आपको एंटरटेन करना चाहिये। उसका पहला काम यही है कि वह आपको एंटरटेन करे। लेकिन सिर्फ

एंटरटेन करना काम नहीं है।जो लिटरेचर या सिनेमा है वह अपने वक्त का जो समाज है उसकी क्या उमंगें हैं, क्या आकांक्षायें हैं, क्या सपने हैं, क्या घबराहट है, क्या डर है, क्या झिझक है, क्या शौक है- ये सबके सब, उसकी तस्वीर दिखाता है। आप कहेंगे हिन्दी कमर्शियल सिनेमा में यह सब कहाँ होता है?

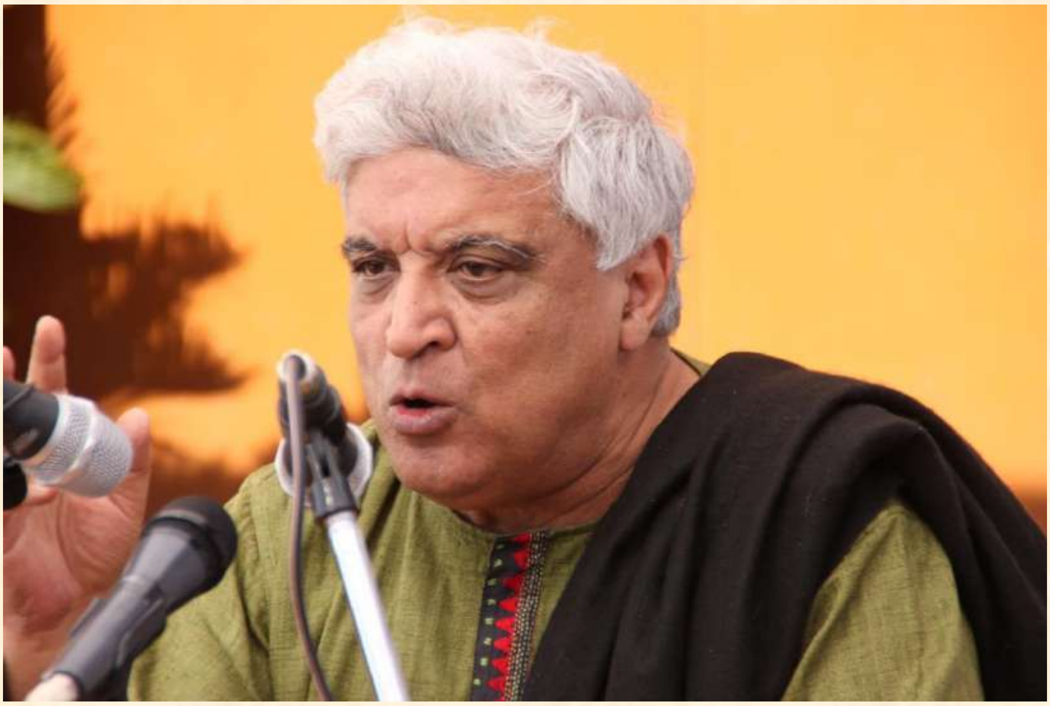

हिन्दी कमर्शियल सिनेमा की अपनी एक ज़ुबान है, जैसे कि सपने की एक ज़ुबान होती है। सपने जो हमें आते हैं, ये क्या हैं? देखिये, इंसान जब सोता है तो वह सो रहा होता है लेकिन उसका हार्ट, उसके लंग्स, उसका लीवर, उसकी किडनी,- सब काम कर रहे होते हैं। यहाँ बहुत से डॉक्टर बैठे हुवे हैं जो मुझसे बेहतर जानते हैं। अगर कभी शरीर के किसी हिस्से में ब्लड-सर्कुलेशन बंद हो जाय तो वह हिस्सा मर जायेगा, ख़त्म हो जायेगा। ब्रेन अगर काम करना बंद करेगा तो ब्रेन मर जायेगा। ब्रेन मर गया तो इंसान मर जायेगा, उसकी साँस भले ही चलती रहे वह ब्रेन-डेड हो जायेगा। ब्रेन को भी काम करना है मगर यदि सोते में भी ब्रेन काम करता रहे तो आप सोयेंगे कैसे? क्या फ़र्क होगा जागने और सोने में? नेचर ने एक ख़ास तरकीब निकाली। नेचर ब्रेन की लैंग्वेज को चेंज कर देता है। तो बजाय इसके आपको शार्प फोकस के, शार्ट-कट, क्लियर-कट विचार आ रहे हों, वह सॉफ्ट होकर, धीरे-धीरे, कुछ खोया-खोया, कुछ सिम्बोलिकली, कुछ मेटाफ़र में चीजें आती हैं। एक साइकोलोजिस्ट आपको बता सकता है कि ये सपना आपने देखा तो क्यों देखा। उसी तरह से सिनेमा भी समाज का सपना है। अगर उसमें डाक्यूमेंट्री की तरह सब-कुछ रियल बताएं तो आदमी एंटरटेन कैसे होगा? वह अपने आप से दूर कैसे जायेगा? रिलैक्स कैसे होगा? लेकिन अगर उसमें कुछ भी

ऐसा न हो जो उसकी ज़िन्दगी से सम्बन्ध रखता है तो वह कहानी उसे दिलचस्प लगेगी ही नहीं। 'पंचतंत्र' की भी अगर कहानी हो- कहानी सारस और लोमड़ी के बीच, कछुवे और ख़रगोश के बीच, शेर और हिरन के बीच- वह भी आपको रोचक कब लगती है? वह करैक्टर भले ही चूहा और शेर है या चूहा और हाथी है, लेकिन जो बात हो रही है आपकी ज़िन्दगी से कहीं न कहीं सम्बन्धित है। उसके जो मूल्य हैं उन्हें आप अपनी ज़िन्दगी में देख सकते हैं, समझ सकते हैं। इससे आपको मज़ा भी आया और अपने उससे रिलेट भी किया। हमारी जो कमर्शियल सिनेमा है वह भी ऐसा ही है। वह एक ड्रीम जैसी लैंग्वेज में बातें करता है, लेकिन अगर आप उसे गौर से देखें तो आपको मालूम होगा कि बात वही कर रहा है जो लोग सुनना या देखना चाहते हैं।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि अगर आप हिन्दी पिक्चर्स के विलेन की सूची बनायें, 1940 से लेकर अब तक की, कैसे-कैसे विलेन होते थे और होते हैं, तो आप उन विलन्स के साथ पिछले साठ-सत्तर वर्ष के हिन्दुस्तान की सोश्यो-इकॉनोमिक या सोश्यो-पॉलिटिकल हिस्ट्री लिख सकते हैं। 1940 के दशक की एवेरज पिक्चर में विलेन ज़मींदार होता था, ठाकुर जिसके पास ज़मीन थी। किसान हीरो होता था या फिर ग़रीब आदमी हीरो होता था। जैसे-जैसे अर्बनाइज़ेशन शुरू हुआ, यह वह वक़्त था जब हिन्दुस्तान नेहरूवियन वैल्यूज़ में जी रहा था। हम सोशलिस्टिक पैटर्न ऑफ़ सोसाइटी की बात कर रहे हैं। उस ज़माने की फ़िल्में- श्री 420, आवारा, पैगाम- उसमें विलेन इंडस्ट्रियलिस्ट, मिल-ओनर, सेठजी- रिच आदमी था। हीरो

वोर्किंग क्लास, पॉपर, मामूली गरीब आदमी। यह वह ज़माना था जब ज़िन्दगी बड़ी सिंपल होती थी। अमीर आदमी बुरे होते थे। ग़रीब लोग अच्छे होते थे। जब यह ड्रीम चल रहा था तो हमारे पास एक रिबेल- स्टार आया जिसे बाद में एंग्री यंग मैन, फॉरएवर ग्रीन हीरो- इस तरह के टाइटल्स आये जो रिप्रेजेंट करते थे शम्मी कपूर।

देखिये, इमेज इम्पोर्टेड चीज़ है। एक्टर उसमें फिट हो जाते हैं। इमेज में जो एक्टर काम करेगा उसे ले लेते हैं। एक्टर इमेज नहीं बनाता, इमेज स्टार बनाती है। यह जो रिबेल था और हम सब उसे रिबेल मानते थे, वह किससे रिबेल कर रहा था? न समाज से, न सोशल-सिस्टम से, न मोरल-वैल्यूज से। वह सिर्फ़ घर वालों रिबेल कर रहा था। इसलिये क्योंकि बाहर का तो हमें यकीन था कि हम सब ठीक कर लेंगे। सब ठीक होने वाला है, कोई प्रॉब्लम नहीं। यह रिबेल स्टार सिर्फ़ माँ-बाप से कहता था कि मैं शादी नहीं करूँगा। यह पहले नहीं होता था। पहले, 1940 के दशक का, जो हीरो था... हमारा जो फ्यूडल-सिस्टम था उसमें सबसे इम्पोर्टेन्ट चीज़ कि आप सिस्टम को तोड़ेंगे नहीं, स्टेटस-क्वो को मानेंगे। आपमें लॉयल्टी होनी चाहिये और ओबीडिएंस, फरमाबरदारी होनी चाहिये कि आपसे जो ऊपर है उसकी बात मानेंगे।, उसके खिलाफ़ खड़े नहीं होंगे। वह जो भी कहता है, सही कहता है। इसी पर ज़मींदाराना और जागीरदाराना सिस्टम चलते हैं। तो यह क़ुरबानी और बलिदान पर प्रीमियम है। आपको जो एक्सप्लॉइट किया ज रहा है उसे वर्च्यू बनाया जा रहा है। जब आप किसी औरत को रेप्रेस करते हैं तो कहते हैं यही तुम्हारा वर्च्यू है। उसका जो एक्सप्लॉइटेशन है उसे वर्च्यू टाइटल देते हैं। क़ुरबानी अगर वर्च्यू है तो बगावत ज्यादा से ज्यादा क्या हो सकती है? कुर्बानी के पड़ौस में क्या है? क़ुरबानी या बलिदान यह है कि दूसरों के लिए आप अपना नुकसान कर रहे हैं। अब अपने बगावत की है कि मैं अपने लिए अपना नुकसान करूँगा और वह देवदास बन जाता है। **देवदास वॉज़ अ रिबेल ऑफ़ इट्स ओन टाइम।** वह अपने को बर्बाद कर रहा है, यह उसका रिबेल है। लेकिन जब समाज बदलता है और वैल्यूज़ बदलती हैं तो अगल क़दम सिर्फ इतना था कि जो रिबेल स्तर होते थे पहले जो रिबेल स्टार थे उन्होंने घर वालों से रिबेल किया, क्योंकि बाहर का तो इत्मीनान था कि बाहर का सिस्टम तो अब ठीक होने वाला है। लेकिन जब नहीं हुआ, और जैसे-जैसे अर्बनाइजेशन बढ़ा, हमने देखा कि विलेन जो है वह शहर का गैंगस्टर हो गया है। आप उस ज़माने की फ़िल्में देखिये। आपके शहर का अंडरवर्ल्ड जो है वह शहर की प्रॉब्लम है और जो माइग्रेंट है उसे फेस करता है। जैसे-जैसे अर्बनाइजेशन आया, जो छोटे शहर का आदमी गया उसको प्रोब्लेम्स होते थे

और वह विलेन बना। लेकिन कुछ ही दिनों बाद एक अज़ीबोगरीब बात हुई कि ये जो विलेन था, जो अंडरवर्ल्ड था वह हीरो हो गया। विलेन ने लक्ष्मण-रेखा पार की और इधर आ गया।

हमने एक नई इमेज हिन्दी सिनेमा में उतरते हुए देखी है। यह थी- एंग्री यंग मैन। क्या यह सिर्फ़ इत्तेफ़ाक है कि एंग्री यंग मन सिर्फ उसी ज़माने में था जब इमरजेंसी आने को थी? जब पहली दफ़ा ऐसा लग रहा था कि कानून टूट रहे हैं? कि जब पहली दफ़ा ऐसा लग रहा था कि कुछ ऐसी पावर्स आ गयी हैं जो एक्स्ट्रा- कोंस्टीट्यूशनल हैं? कि पहली दफ़ा आदमी को लगा कि जो सपना इतने दिनों से चल रहा था वह चकनाचूर हो चुका है। इस समाज में अगर विजरान्ते का करैक्टर, वह जो कानून अपने हाथ में लेकर इन्साफ ख़ुद ढूंढे, अगर वह आये और हमें वह हीरो लगे तो कोई हैरत की बात नहीं है। यह विजरान्ते 1952 या 1958 में नहीं आ सकता था। यह उसी वक्त आ सकता था जब समाज को लगे कि इन्साफ नहीं मिल रहा है तो ख़ुद ही करो। उस समाज के अन्दर उद्गार था, बेचैनी थी, बेताबी थी, कोलाहल था। लेकिन आप कितने दिनों तक गुस्से में रहेंगे? आदमी गुस्से से भी थक जाता है। आप देखेंगे कि 1960 के दशक में जो कमर्शयल सिनेमा है उसमें आपको पॉलिटिकल लीडर, मिनिस्टर, पुलिस अफसर- ये विलेन लगते हैं। ऐसी फ़िल्में पहले आप सोच भी नहीं सकते थे। इस तरह की फ़िल्में 1960 के दशक में क्यों? कौन किस पर असर डाल रहा है?

आज का जो टॉपिक है, **'समाज के आईने में सिनेमा और सिनेमा के आईने में आज का समाज'**, यह ऐसा है कि जैसे बारबर शॉप में दोनों दीवारों पर मिरर लगा होता है। आप देखते

हैं दूर तक इनका रिफ्लेकशन दोनों तरफ रहता है। अब यह फ़ैसला कौन करेगा कि पहले किस मिरर ने किस मिरर को पहली बार रिफ्लेक्ट किया? लेकिन इसके बावजूद मैं समझता हूँ कि समाज में ज्यादा ताकत है। समाज ज्यादा असर डाल सकता है। जो प्रोडूसर है वह तो बेचैन है समाज को खुश करने के लिये, इसलिये कि उसे पैसे चाहिये। उसे इशारा मिलना चाहिये कि किधर जाये। वह सोशलिस्ट नहीं है, पॉलिटिकल साइंटिस्ट नहीं है, साइकेट्रिस्ट नहीं है। लेकिन क्योंकि उसका धन्धा है तो उसे बराबर खबर मिलती रहती है कि हवा में क्या है। जिस तरह डार्विन का नेचुरल सिलेक्शन है उसी तरह फ़िल्में भी बनती हैं और जो फ़िल्में चलीं, जिनमें लोगों का ध्यान गया उनसे यह हिन्ट मिलता है कि फिल्म-इंडस्ट्री को यह चाहिये ही चाहिये। फिर वे उधर चलते हैं। जब वहां नहीं चलता है तो कहीं और जाते हैं। वे ढूंढ रहे हैं और होता क्या है कि ढूंढ तो ऑडियंस भी रही है। ढूंढ तो हम भी रहे हैं। हमें भी नहीं मालूम कि हमें क्या चाहिये, इसलिए कि हमारा जो ख़याल होता है उसमें शब्द नहीं हैं। हमारी जो तमन्ना है उसकी तस्वीर नहीं है। जो हमारी बेचैनी है उसका कोई रीज़न हमें ठीक से नहीं मालूम। 'कुछ' है और अगर किसी राइटर या डायरेक्टर को हल्का सा अन्दाज़ होता है, जानकर नहीं, उसे बिल्कुल नहीं मालूम होता कि लोगों को क्या चाहिये। मगर उसे आईडिया अपील कर जाता है। जब वह कहानी बनाता है, जब एक आइकॉन देता है, जब वह एक करैक्टर देता है या जब वह उस ख़याल को एक सूरत दे देता है तो लोगों को लगता है कि बस यही है। यही तो चाहिये था! यही तो हम कह रहे थे या कहना चाह रहे थे! जब वहां से कन्फर्मेशन मिलता है तो यकीन आता है और उसे डिफाइन करते हैं। इस तरह कल्ट पर कल्ट बनती रहती है।

यह हीरो कौन है? हीरो या हीरोइन जो भी कहो। वह उसे समय की जो मोरालिटी और उस समय का जो इंस्पिरेशन है, जो आकांक्षायें हैं, जो उम्मीदें हैं और जो मूल्य हैं उनको अगर आप गूंथ कर एक करैक्टर बनाइये तो वह है उस समय का हीरो। मूल्य क्योंकि बदलते रहते हैं, आकांक्षायें बदलती रहती हैं इसलिए हीरो भी बदलते रहता है। जैसा हीरो होगा विलेन भी वैसा ही चाहिये होगा। यह अग्रीमेंट जो है, दुनिया में एक उसूल है कि हर मोमेंट, हर फैशन, हर कल्ट, आइडियोलॉजी अपना कार्टून ख़ुद ही बन जाता है। यह जो एंग्री यंग मैन का इमेज था यह धीरे-धीरे अपना कैरीकेचर बन गया। अब सचमुच का गुस्सा नहीं दिखा रहे हो, वह तो झूठ दिखाई देता है। वैसे भी लोग थक गए। सिनेसिज्म आया, सिनेसिज्म इमेज। एक और मेजर बात हमारी सोसाइटी में हो गयी। लिबरलाइजेशन आया, दुनिया ही बदल गयी। मुझे तो याद है कि जब मैं स्कूल-कॉलेज में था उन दिनों हमारे बड़े-बड़े शहरों की सड़कों पर

या एम्बेसडर होती थी या फ़िएट होती थी या एक स्टैण्डर्ड छोटी सी गाड़ी होती थी। हमारी दुकानों में किसी चीज़ की बहुत सारी वेरायटीज नहीं मिलती थी। अब जो हंगामा हुआ और जो चीजें आयीं, जो टेलीविज़न आया, जो चैनल्स आये, एक पूरा कल्चरल इन्वेज़न हिन्दुस्तान पर हुआ। ऐसा एक्सपोज़र तो पहले कभी हुआ ही नहीं था। हमने देखा ही नहीं था। तो क्या होता ही कि कहाँ तो तमन्ना थी एक। जब सबके सब आपके सामने डाल ही दिया गया तो समाज या आम हिन्दुस्तानी थोड़ा सा हिला कि कहीं इस तूफ़ान में मैं उड़ तो नहीं जाऊँगा। मेरी जड़ें तो अपनी जगह हैं?

यह कमाल की बात है कि दो सौ वर्ष की अंग्रेज़ हुकूमत के बाद जो हमारी फ़िल्में बनती थीं, या 1940 के दशक में भी जो फ़िल्में बनती थीं उनमें हिन्दुस्तानियत होती थी- लिबास में, बातचीत में,परम्परा में। लेकिन धीरे-धीरे आज़ादी के बाद वह हिन्दुस्तानियत फिल्मों में कम होती गयी और वेस्टरनाइज़ेशन बढ़ता गया। वह टेम्पटेशन जो मटीरियल गेन का था, मटीरियल कम्फर्ट का था, फिल्मों में आता चला गया। जब दरवाज़ा खुला तो सामानों, चीजों और फैशन का इन्कलाब, सैलाब अन्दर आ गया। यहाँ डगमगा गया कि कहीं ऐसा तो नहीं कि यह हमें बहाकर तो नहीं ले जायेगा? तो क्या करें? छोड़ दें? कोक और पेप्सी न पीकर लस्सी पियें? जीन्स न पहन धोती पहनें? वेस्टर्न कल्चर भी बड़ा सेलेक्टिव है। कहीं समाज

ने और कहीं समाज के साथ हिन्दी फिल्मों ने एक फार्मूला तैयार किया कि देखो भाई, आधा-आधा कर लेते हैं। इसे भी ले लेते हैं और थोड़ा उधर भी पकड़ कर रखते हैं। 'कुछ-कुछ होता है' में एक सीन इसकी परफेक्ट मिसाल है। रानी मुखर्जी मिनी स्कर्ट पहने जा रही है। दो-तीन लड़के सीटी बजाते हैं, जिनमें एक शाहरुख खान भी है। रानी मुखर्जी पलट कर उन्हें देखती है और "जय जगदीश हरे" गाने लगती है। सारे लड़के शर्मिंदा हो जाते हैं। तो इधर की भी ज़न्नत पकड़ ली और उधर का स्वर्ग भी जाने नहीं दिया! धीरे-धीरे एक नया फार्मूला जो आपको 'हम आपके हैं कौन', 'कुछ-कुछ होता है' या 'दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे' फिल्मों में दिखाई देता है। वहां का जो स्कूल या कॉलेज दिखाई दे रहा है वह हिन्दुस्तान का नहीं लग कर कैलिफ़ोर्निया का लगता है, जो कपड़े पहने हैं वे हिन्दुस्तानी स्टूडेंट्स के नहीं इत्यादि। लेकिन साथ में उन्होंने करवाचौथ को ग्लोरिफाई उसके साथ राखी, कि देखो यार इंडियन तो हम हैं ही, फ़िक्र की बात नहीं। लेकिन थोड़े इधर के भी मज़े ले लो। यही मोरल वैल्यू हमारी सोसाइटी में थी। फैक्ट यह है कि करवाचौथ अक्विएस के साथ जितना परफेक्शन आया उतना पहले नहीं था। इसलिए कि बाकी सब काम घर के कर लो और अपना कानशन्स क्लियर कर लो कि भाई सब ठीक-ठाक है, घबराने की कोई बात नहीं है।

दूसरा जो डेवलपमेंट इसके साथ हुआ वह बड़ा अजीब था। देखिये, ज़िन्दगी अगर आपको सीधे-सीधे चॉइस दे दे कि यह अच्छा है और यह बुरा है तो आप अच्छा ले लेंगे और बुरा छोड़ देंगे। लेकिन लाइफ़ ऐसा नहीं करती। लाइफ़ आपको एक पैकेज-डील देती है कि देखो भाई, एक पैकेज यह है। इसमें पांच बहुत अच्छे-अच्छे हैं, सात मीडियम साइज़ ख़राब हैं, चार मीडियम साइज़ अच्छे हैं और उन्नीस बहुत छोटे-छोटे बुरे हैं। दूसरे पैकेज में आठ बड़े बहुत अच्छे हैं, सोलह बड़े बुरे हैं, तीन छोटे बुरे हैं और सात छोटे अच्छे हैं। कौन सा चाहिये? अब आप सोचते रहिये कि यह पैकेज अच्छा है या दूसरा। ऐसे ही लाइफ है। यह आपको पैकेज देती है। इसमें कुछ अच्छा है और कुछ बुरा। आप सोचते रह जाते हैं कि कौन सा पैकेज लूँ। एक पैकेज हमारे पास आये जो है मल्टीप्लेक्स। इसके कुछ फायदे हैं और कुछ नुकसान भी। यह मल्टीप्लेक्स तभी आ सकता था जब बड़े शहरों में इतना पैसा आ जाये जितना आ रहा है। हम बचपन में पिक्चर देखते थे तो लोअर स्टाल का टिकट दस नया पैसा या बीस नया पैसा होता था। अमीर लोग बालकनी से देखते थे जिसका टिकट तीन रुपये होता था, फिर धीरे-धीरे पचास रुपये तक हो गया। लेकिन मल्टीप्लेक्स में तो पांच सौ, बल्कि कहीं-कहीं तो सात सौ पचास या हज़ार रुपये तक है! यानी दस आदमियों को मेरी पिक्चर मामूली थिएटर में पसंद आये या मल्टीप्लेक्स में एक को आये, बराबर है। क्या मैं

पागल हूँ कि दस के पीछे भागूँ? मैं इस एक को क्यों न खुश कर लूँ? यह आदमी ठीक है। यह आदमी, जो पांच सौ या एक हज़ार रुपये का टिकट ले सकता है, कहाँ से आया? यह मिल में काम करता है? टैक्सी-ड्राईवर है? क्लर्क है? यह कौन है? इनमें से कुछ भी नहीं है। यह वोर्किंग-क्लास का नहीं है; कुछ खाया-पिया है। यह खाया-पिया आदमी मेरी पिक्चर देख रहा है। अगर यह अपर मिडिल-क्लास का आदमी मेरी पिक्चर देख रहा है तो फिर मेरा हीरो लोअर मिडिल class का क्यों होगा? मेरा हीरो वर्किंग-क्लास का क्यों होगा? पिक्चर कितनी रियल हैं, कितनी अन-रियल हैं, उनका इंटेलेक्चुअल लेवल क्या है- मैं इसकी बात नहीं कर रहा हूँ। लेकिन 1950 या 1960 के दशक का जो प्रोटागनिस्ट (हीरो) होता था वह वर्किंग-क्लास से आता था- टैक्सी ड्राईवर, रिक्शावाला, क्लर्क, टीचर, बेरोजगार नौजवान, किसान, मिल-वर्कर- ये पिक्चर के हीरो होते थे। आप याद कीजिये कि आखिरी बार अपने कब वर्किंग-क्लास का आदमी हिन्दी फिल्म में हीरो देखा?

जैसे हमारे यहाँ फाइव-स्टार होटल हैं, फाइव-स्टार हॉस्पिटल हैं, अब फाइव-स्टार सिनेमा-हाउस हो गए हैं जिनमें फाइव-स्टार लोगों के लिए फ़िल्में बनती हैं। अब इसका फायदा यह है कि क्योंकि कम लोग देख रहे हैं और उनका एक स्टैण्डर्ड है, जो 1980 के दशक के स्टैण्डर्ड से डिफरेंट है। 1980 के दशक का स्टैण्डर्ड? पहले 1980 के दशक की बात कर लेते हैं, फिर यहाँ आते हैं।1980 के दशक में बड़ा खतरनाक था। फिर वही बात, पैकेज वाली। हर

पैकेज में कुछ अच्छा है और कुछ बुरा। देखिये, जो मुल्क 1947 में सुई नहीं बना पा रहा था वह आज दुनिया के बड़े इंडस्ट्रियलिस्ट मुल्कों में से एक है। इसका एक फायदा और एक नुक़सान है। मेरे बचपन या मेरे स्कूल के दिनों में मिडिल-क्लास कहाँ से आता था? मिडिल-क्लास आता था यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर, स्कूल का टीचर, वकील, डॉक्टर, गवर्नमेंट-सर्वेंट-यही था मिडिल-क्लास। यानी मिडिल-क्लास होने के लिये एजुकेशन होना ज़रूरी था। ये सब एक्सटेंडेड जेन्ट्री के लोग थे, लैंडेड जेन्ट्री के लोग थे। उनका रिश्ता गाँव में होता था। भले ही गाँव में न रहते हों लेकिन इन्हें गाँव के बारे में पता था। मिडिल-क्लास फैमिलीज़ में इनके गाँव या छोटे कस्बे के रिश्तेदार इनसे मिलने भी आते थे। अगर गाँव न भी जाते हों तब भी इनको गाँव की थोड़ा-बहुत सुध-बुध थी। मैं अपनी ज़िन्दगी में कभी एक दिन भी गाँव में नहीं रहा हूँ लेकिन मैं अवधी बोल भी सकता हूँ और लिख भी सकता हूँ। मैं तो लखनऊ में रहता था लेकिन गाँव के लोग हमारे रिश्तेदार आते थे। यही हम सबका था। वर्किंग-क्लास होने का मतलब कुछ एजुकेटेड होना था। इंडस्ट्रियलाइजेशन जब आया तो उसकी औग्ज़ीलिअरीज़ होती हैं। जो मेन इंडस्ट्री होती है वह सब-कुछ नहीं कर सकती। वह हायर करती है कि साइकिल के जो छर्रे हैं वो तुम बनाओ, ट्यूब में जो क्लिप लगेगा वह तुम बनाकर दो वगैरह-वगैरह। एक इंडस्ट्री के साथ अनेक छोटी-छोटी इंडस्ट्री चलती हैं। 1980 के दशक में पहली बार करीब पन्द्रह करोड़ लोग मिडिल-क्लास इनकम-ब्रैकेट में एंटर हुए। यह पहली जनरेशन थी मिडिल-क्लास की कि दे हैव डिफरेंट स्टेटिस्टिक्स। आप कहेंगे कि मैं एंटी-क्लास बात कर रहा हूँ लेकिन ऐसी बात नहीं है। आगर ज़िन्दगी में ग़रीबी है, डेप्रिविएशन है, भूख है, मजबूरियाँ हैं, कड़वाहट है तो आदमी कहाँ से सीखने का वक़्त निकालेगा? कहाँ से समझेगा कि पोएट्री की ब्यूटी क्या है? उसे दो जून की रोटी कमानी है। ज़िन्दगी हालात की तरह कड़वी और बद्सूरत हो जाती है। वहां जगह नहीं है, मौक़ा नहीं है। यह आदमी जब नया-नया मिडिल-क्लास में आया तो उसकी जो स्टेटिस्टिक्स थी, चीजों का जो एप्रिसिएशन था वह अलग था। जो ट्रेडिशनल मिडिल-क्लास थी वह ‘साहब, बीवी और ग़ुलाम’ देखती थी, ‘दो बीघा ज़मीन’ को बड़ी हिट फ़रमाती थी, ‘सुजाता’ या ‘प्यासा’ जैसी फ़िल्में देखती थी। ये सब कमर्शियल फ़िल्में हैं।

सोसाइटी में अलग-अलग नहीं रहते हैं। वो पॉलिटिक्स का ख़याल करेंगे, ये पिक्चर देखेंगे, वो कॉलेज जायेंगे- ऐसा नहीं है। ये सब एक-दूसरे से मिले हुए हैं। जो घटियापन 1980 के दशक के हिन्दी फ़िल्मी गानों में मिलता है वही घटियापन 1980 के दशक की पॉलिटिक्स में मिलता है। किसी को अच्छा न लगे लेकिन यह बात मैं एक-दो बार पहले भी कह चूका हूँ,

एक बार और कह देता हूँ। एक गाना था 'सरकाइ लो खटिया जाड़ा लगे', एक गाना था 'चोली के पीछे क्या है'। मैं इन गानों का और उस ज़माने में एल. के. अडवाणी की जो पॉलिटिक्स थी, इन्हें एक पैकेज से आता हुआ समझता हूँ। न इस तरह का गाना और न इस तरह का लीडर ही 1960 के दशक में हिट हो सकता था। यह एक पैकेज है। और जब चेंज हुआ तो दोनों तरफ़ हुआ।

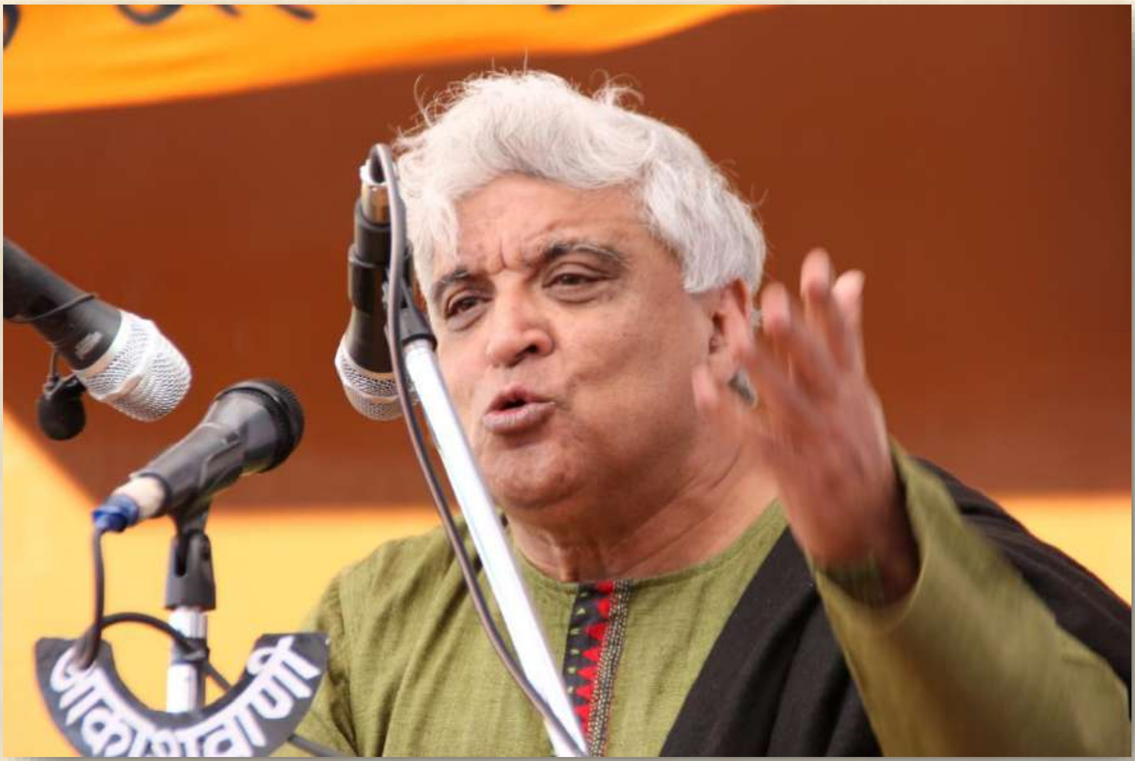

यह जो डिप आयी है, जितने अच्छे फिल्म डायरेक्टर थे हिन्दी सिनेमा में, जितनी अच्छी पॉलिटिकल वैल्यूज थीं, जितनी अच्छी पॉलिटिक्स थी वह एक किनारे लग गयी। जितने अच्छे फिल्म डायरेक्टर थे , चाहे रमेश सिप्पी हों, विजय आनंद हों, यश चोपड़ा हों- वे भी किनारे लग गये। दे वर मार्जिनलाइज्ड इन एट्टीज़। इनकी फ़िल्में नहीं चलीं। उन लोगों ने टेकओवर किया जो इसी मिज़ाज़ की फ़िल्में बनाते थे, जो हम्बल बैकग्राउंड से आये थे। इनके पास पैसा था। इन्होंने अपने बच्चों को बेहतर स्कूल में भेजा और ये बच्चे बेहतर हालात में पढ़े। इनकी स्टेटिक वैल्यूज चेंज हुईं और तब वह दौर आया जहाँ कोम्प्रोमाईज़ शुरू हुए। आप देखते हैं कि 1990 का दशक जैसे ही शुरू होता है हिन्दी फिल्मों में थोड़ी सी पोलिश आना शुरू होता है। मैं समझता हूँ यह शुरू हुआ 'हम आपके हैं कौन' से तो उसका जो पूरा ब्रिज बनता है वह जाता है 'दिल चाहता है' तक। 'दिल चाहता है' में कम्पलीशन

यह है कि शुरू में जो घबराहट लग रही है कि हम हिंदुस्तानी हैं कि नहीं, अपने आप को सबूत देना ज़रूरी है। दर्शक भी कह रहा है कि ये वेस्टरनाइज़ेशन है, लेकिन हम हैं इंडियन। वह इनसिक्यूरिटी ‘दिल चाहता है’ तक ख़त्म हो गयी और इत्मीनान से, बिना ज़िन्दगी में गिल्टी फील किये कि हम अपनी ही दुनिया में क्यों जी रहे हैं, इंसान जी रहा है।

कुछ दिनों, बीच में पाकिस्तान विलेन रहा था। फिर वह भी ‘लॉ ऑफ़ डिमीनिशन’ से ख़त्म हो गया। एक ही बात कितनी बार दिखाएँ? अब हमारा हाल यह है कि हमारी हिन्दी फिल्मों में विलेन ही नहीं है! हमारी सोसाइटी में भी कहाँ है? हमने तो विलेन्स को हीरो बना रखा है! खैर वह कहानी फिर कभी।

तो इधर आइये। हम देखते हैं कि हीरो ही नहीं मैच्योर है। ज़ाहिर है कि इतने वर्षों से हिंदुस्तान में संघर्ष जारी है। अभी बहुत कम हुआ है, बहुत कुछ होना है लेकिन कुछ हुआ है। यहाँ पर, इस फ्रंट पर कि जहाँ एक नारी को उसकी अपनी जगह, अपना अधिकार, अपनी एम्पावरमेंट मिले। मैंने आपसे अर्ज़ किया कि हम जब भी कोई बुरा काम कार्टर हैं तो उसका नाम अच्छा रखते हैं। अगर हमें किसी मुल्क पर आयल के लिए हमला करना है और वहाँ के आयल वेल्स कब्जे में लेने हैं तो यह थोड़े कहेंगे कि वर फॉर आयल वेल्स। डैट विल साउंड वैरी वल्गर। हम कहते हैं **“वॉर ऑन टेररिज्म”**। अगर हमें अमीरों को मुफ्त में ज़मीनें देनी हैं तो हम उसको कहते हैं डेवलपमेंट। अगर हमें कुछ लोगों के हाथ में रिसोर्सेज देने हैं, चीजें

प्राइवेटाइज़ करनी हैं तो उसे हम कहते हैं लिबरलाइजेशन। अगर हमें औरतों के अधिकार छीनने हैं, उन्हें सब्जूकेट करना है तो हम यह थोड़े कहेंगे की हम औरतों को सब्जूकेट करना चाहते हैं। यह नारी जाति की इज्ज़त का सवाल है! हम उस पर जो जुल्म कर रहे हैं उसे कह रहे हैं यह उसकी इज्ज़त है। हिंदुस्तान में अक्सर कहा जाता है कि हम औरतों को देवी समझते हैं। मैं हाथ जोड़कर उन लोगों को कहता हूँ कि अब उन्हें इंसान समझना शुरू कीजिये। वह जो देवी बना दी गयी थी, पेडीस्टल पर बिठा कर और उसका धर्म था बलिदान। हमारा धर्म नहीं है बलिदान! यह तो औरतों का है! 'मैं चुप रहूँगी' जैसी फ़िल्में बनती थीं। यह फ्रॉड कितने दिन चलता? धीरे-धीरे औरतों ने कहना शुरू किया कि इट्स अ बैड नेम। माफ़ कीजियेगा, अब बलिदान काफ़ी हो चुका। धीरे-धीरे समाज में चेंज आना शुरू हुए। धीरे-धीरे हिन्दी फिल्मों में हीरोइनों की शक्ल चेंज हुई। पुरानी जंजीरें तोड़ दीं गयीं। नई? प्रॉब्लम यह है कि मॉडर्न इंडियन वुमन क्या है इसके बारे में कोई खुलकर बात नहीं कर रहा है। इसके बारे में हिन्दी सनेमा में कुछ नहीं है। आप देखिये, इतनी टैलेंटेड हीरोइनें- श्रीदेवी, माधुरी दीक्षित, दस-पन्द्रह साल के करियर थे इनके। लेकिन पूरी ज़िन्दगी में इन्हें एक भी ऐसा रोल नहीं मिला जिसे आप याद कर सकें कि क्या रोल था! क्या काम किया इन्होंने! इसके मुकाबले में मीना कुमारी को मिला, नरगिस को मिला और नूतन को मिला। क्यों? क्योंकि तब मालूम था कि आइडियल औरत क्या होती है। इसलिये 'मदर इंडिया', 'साहब, बीवी और गुलाम', 'सुजाता' जैसी फ़िल्में बन सकती थीं। अब जब यही नहीं मालूम कि आइडियल औरत क्या होती है तो आप बड़ा रोले लिखेंगे कैसे? कौन डिफाइन करे कंटेम्पररी मॉडर्न वुमन को? जो कन्ज़र्वेटिव, पुराने ख़याल का आदमी है वह घबराता है कि इसमें तो अपना बड़ा हिस्सा निकल जायेगा। जो लिबरल है वह भी डरता है कि कि वह कहेगा तो दूसरा लिबरल बोलेगा कि बस इतना ही? और दूसरा लिबरल भी झिझकता है कि कहीं मैं आउट-लिबरल न हो जाऊँ! एक कन्फ्यूजन है। एकाध बहुत अच्छी फ़िल्में बनी हैं। जैसे मैं कहूँगा कि 'अर्थ' बहुत अच्छी पिक्चर है। लेकिन मुझे अभी हिन्दी सिनेमा में केऑस दिखाई देता है। आपको कोई भी बताएगा कि लड़कों में स्मोकिंग का जो परसेंटेज है वह कम हो रहा है, लेकिन लड़कियों में बढ़ रहा है। यह गुस्सा क्या है? यह क्या बताने की कोशिश है इसे मैं समझता हूँ। लेकिन क्या यही तरीका है? क्या इससे काम हो जायेगा? सिवाय इसके कि आपके फेफड़े खराब हों, इससे कुछ होने वाला है? तो अभी एक गुस्सा है। एक झुंझलाहट है। जंजीरें तोड़ तक दी गयी हैं लेकी रास्ता नहीं मिल रहा है। कि आज की औरत एक्चुअली है क्या। इसे हम डिफाइन नहीं कर पा रहे हैं। इसमें अज़ीब- अज़ीब पागलपने की बातें भी हो रही हैं। वैसे भीं दूसरी तरफ, अब इधर हो रही हैं। एक अच्छे खासे डायरेक्टर यश चोपड़ा की पिक्चर

‘जब तक है जान’ की हीरोइन कहती है कि मैं शादी करूँगी लेकिन उसके पहले मैं हर नेशनलिटी के एक आदमी के साथ सोऊँगी। यह डायलाग है पिक्चर का! पता एक का कोटा अपने क्यों कर लिया! बहरहाल आपकी मर्ज़ी। अभी तक नहीं मालूम कि हमें करना क्या है। यह अँधेरे में कुछ हो रहा है और यह कन्फ्यूजन मुझे सोसाइटी में भी दिखता है। हम सिगरेट पीकर थोड़े साबित कर सकते हैं कि हम एम्पावर्ड हैं; न हम इस तरह की बातें कहकर कर सकते हैं। कुछ और करना होगा। हिन्दी सिना को खबर हो गयी कि अब यह फ्रॉड नहीं चलेगा कि ‘मैं चुप रहूँगी’। लेकिन ‘मैं चुप रहूँगी’ का ज़वाब ‘मैं जिंदा जला दूँगी’ या ‘ज़ख्मी शेरनी’- यह सब नहीं है।

हमेशा होता क्या रहा है कि समाज एक मेसेज देता है जिसे रिसीव करके प्रोड्यूसर, डायरेक्टर, राइटर आदि मिलकर उस पर फ़िल्में बनाते हैं। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि बीच में मेसेज आने बंद हो गये या जो मेसेज थे वे इस काबिल नहीं थे कि उन पर फ़िल्म बन सके। मुझे कभी-कभी बड़ी हैरत होती है कि सेकंड वर्ल्ड-वॉर जितना ही या उससे भी बड़ी ट्रेजेडी भारत का विभाजन था जिसमें लाखों लोग मारे गये, लाखों लोग बेघर हुवे, लाखों का सब-कुछ लुट गया। कितनी फ़िल्में बन सकतीं थीं इस पर! लेकिन नहीं बनीं। क़माल की बन सकतीं थीं। ऐसा लगा कि यह तो इतना भयानक, इतना बदसूरत इंसिडेंट है और यह पूरा चैप्टर ऐसा है कि यह सपने में नहीं ढल सकता। यह नाईटमेयर बन सकता है कि कोई

चीख़ मार कर आये, लेकिन इसे सपना नहीं बनाया जा सकता। हैरत कीजिये कि इस पर फिल्म नहीं बनी। कभी-कभार हल्का इशारा भर हो गया लेकिन डिटेल में नहीं बनी।

मुझे ऐसा लगता है कि एक ऐसा वक़्त आया जब समाज इस तरह की मेसेज देने लगा जिन पर फ़िल्में नहीं बन सकतीं थीं। यह मेसेज थी गरीबी की, लालच की, खुदगर्जी की। ओपन मार्किट, लिब्रलाइजेशन का यह भी प्रॉब्लम है कि 'हम' कमज़ोर हो जाता है और 'मैं' मज़बूत हो जाता है। जब 'हम' ही नहीं है तो कौन सी मेसेज दी जाये जो अच्छी लगे? इसलिये एक सन्नाटा है। उसमें रोमांस पर फ़िल्में बन रही हैं या थ्रिल पर बन रही हैं या भूतों पर बन रही हैं। लेकिन क़माल यह है कि अगर आप हिन्दी फ़िल्में देखिए तो ऐसा लगेगा कि कोई सोशल इशू बचा ही नहीं है। जो आदमी पांच सौ रुपये का टिकट खरीद रहा है वह नहीं जानना चाहता कि कालाहांडी में लोग भूखों मर रहे हैं। इसलिए, क्योंकि उसकी ज़िन्दगी मज़े की पार्टी हो गयी ही। वह मज़े ले रहा है। वह कहता है भाई, मेरा फन मत ख़राब करो। वह नहीं जानना चाहता कि किसान सुसाइड क्यों कर रहे हैं। उसे नहीं सुनना है। मिडिल-क्लास की यह खुदगर्ज़ी फिल्मों में भी दिखाई देती है। आज देश की पचहत्तर परसेंट पापुलेशन गाँव में रहती है पर कितना कवरेज है? लेकिन आप यह भी नहीं कह सकते कि पचहत्तर परसेंट आबादी गाँव में है इसलिये पचहत्तर परसेंट कवरेज वहाँ की होनी चाहिये। अरे भाई, वे टेलीविज़न थोड़े ही देखते है। अब सटेलाइट के बाद टेलीविज़न भी चला गया वहां, पंचायत में है। अब क्यों नहीं कवरेज देते हो? अगर बड़े, पोपुलर चैनल्स पर फ़सलों के बारे में आये तो लाखों-करोड़ों लोग देखेंगे। नहीं साहब, उन्हें नहीं दिखाना है। इसलिये कि टेलीविज़न तो उसके लिए है जो एडवरटाइज़ की जाने वाली चीज़ें, समान खरीद सकें। जो पाउडर, क्रीम, एयर-कंडीशनर, कार, स्कूटर आदि खरीद सकता है। उसके इंटरेस्ट के कार्यक्रम और न्यूज़ क्या हैं? भले ही आबादी में कम हो लेकिन पैसा तो उसके पास है ना! इसलिये टेलीविज़न पर वह दिखेगा जो वह आदमी देखना चाहता है जो एडवरटाइज़ की जाने वाली चीज़ें खरीद सकता है! अब किसान भले ही कितने भी हों, दस गुना ज्यादा हों लेकिन खरीदेंगे क्या? उन्हें क्यों एंटरटेन किया जाये? क्यों इन्फॉर्म किया जाये?

यही हाल हिन्दी फिल्मों का है जहाँ हमारा कोई सोशल इशू, कोई पॉलिटिकल इशू झलकता नहीं। एक वक़्त तो मजबूरी थी। इतनी भयानक बात थी पार्टीशन कि इंसान वाकई हैंडल नहीं कर पा रहा था। पार्टीशन पर मुझे अचानक ख़याल आया कि एक काम की बात है- पार्टीशन 1947 में हुआ, 1959-60 तक कोई ऐसी फिल्म नहीं बनी जिसमें हीरो और हीरोइन, दोनों मुसलमान हों। आफ्टर इंडिपेंडेंस, 1959 दे बाद पहली बार एक फ़िल्म बनी जिसका नाम था

‘चौदहवीं का चाँद’। ‘चौदहवीं का चाँद’, मेरे महबूब’, ‘मेरे हज़ूर’- ये जो पिक्चर हैं इन्होंने एक सुपर मुस्लिम इमेज बनायी। इन्हें देखकर लगता है कि इंडिया में जितने भी मुसलमान हैं वे या तो नवाब हैं या शायर। जितनी औरतें हैं वे या तो नवाब की ख़ूबसूरत बेटी हैं जो चिलमन के पीछे खड़ी रहती हैं या तवायफ़ें हैं जो मुजरा करती हैं। इनके अलावा तो कोई काम-वाम है नहीं। मुसलमान डॉक्टर कैसे हो सकता है! सुपर मुस्लिम क्रिएट हो गया और एक ऐसी दुनिया जिसमें ग़ाव तकिये रखे हुए हैं, शमां जल रही है और लोग एक-दुसरे से गज़लों में बात कर रहे हैं। भाई, ये तो कमाल के लोग हैं! ये मुसलमान मुझे बहुत पसंद हैं। पड़ोस में रहने वाला मुसलमान जिसकी साइकिल की दुकान है? एक भी शायरी इसे याद नहीं हैं! यह थर्ड-क्लास आदमी है। वह अच्छा है। जो साइकिल की दुकान वाले मुसलमान थे वे भी खुश हैं। “बतायें साहब, इंडिया में आप कहाँ के हैं?” “जी, मैं लखनऊ का”। “अरे! आप लखनऊ के हैं! भाई, आपके घर में तो रोज़ मुजरा होता होगा।” इस तरह की इमेज जिसमें यह भी खुश है और वह मुसलमान भी खुश है। वह भी समझ रहा है कि मेरा तो यह कल्चर है, जो असल में कभी था ही नहीं। अरे भाई, कुछ लोग हुए नवाब-ववाब। हिन्दू राजा-महाराजा थे तो क्या हर हिन्दू राजा-महाराजा था? अब इन्होंने अपना मिथ बनाया। जो ‘काऊ बॉयज’ मूवी है, कैलिफ़ोर्निया में कभी वन स्ट्रीट विलेजेज़ नहीं थे जहाँ गन-मैन घूमते रहते थे जो एक-दूसरे को शूट करते थे। ये सब कहानी-किस्से हैं। यह एक फाल्स इमेज मुस्लिम वेस्टर्न तैयार हो गयी और बहुत दिनों तक चलती रही। यह फ्रॉड बहुत दिनों तक चला।

उसके बाद टेररिज्म शुरू हुआ। टेररिज्म पर फ़िल्में बनीं तो पहली दफ़ा यह हुआ कि विलेन मुसलमान बना। पहले मुसलमान बहुत अच्छे लोग होते थे। मतलब दोस्त है तो जान दे देगा। टोकन मुस्लिम, जैसे कैबिनेट में होते थे ना- एक ओबीसी, एक एससी, एक मुसलमान मिनिस्टर।ऐसे ही फिल्मों में भी एक टोकन मुस्लिम होता था। वह बहुत अच्छा आदमी होता

था। या एक बूढ़ी औरत होती थी जो सबसे मुहब्बत करती थी। ‘मुग़ल ए आज़म’ के दुर्जन सिंह जिसका रोल अजित ने किया था, जो अनारकली को सलीम के लिए बचाकर लाता है, वह रेयर था। वह टोकन हिन्दू था। ये जो टोकन करैक्टर हुआ करते थे, चाहे हिन्दू हों या मुसलमान; मुस्लिम सोशल में हिन्दू होते थे और जो नार्मल पिक्चर होती थी वह सिर्फ सोशल कहलाती थी। पता नहीं उन्हें क्यों सोशल कहते थे? व्हाट वाज एंटी-सोशल अबाउट द अदर्स? उनमें जो यह टोकन मुसलमान होता था वह बहुत अच्छा दोस्त होता था। याद रखिये, टोकन करैक्टर भाई-भाई बन सकते थे लेकिन ये आशिक हो जायें ऐसा नहीं हो सकता था। ये तो एक ख़ास डिपार्टमेंट में रखे जाते थे। जब टेररिज्म आया तो कुछ लोगों ने उसे डिफाइन किया कि यह पाकिस्तानी मुस्लिम और यह इंडियन मुस्लिम- ये अलग-अलग हैं। कुछ लोगों ने उसे क्लियरली डिफाइन भी नहीं किया, वे ओवरलैप भी कर गये। यह भी कन्फ्यूजन हुआ। अब हमारा हाल यह है कि हमारे पास विलेन तो बचे ही नहीं। अब हम आपको कहानियाँ वे सुना रहे हैं जो सामाजिक रियलिटी से आँख बचाकर चलती हैं।

मैं नाउम्मीद नहीं हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि जिस तरह से क्रूड पिक्चर बन रही थी उसे पोलिश किया गया और आप आज अगर कोई हिन्दी फिल्म देखें वह पोलिश्ड है, इसमें कोई शक नहीं। इनमें अभी वह इंटेलेक्चुअल डेप्थ नहीं है जो विमल रॉय के पास थी, गुरु दत्त के पास थी, राज कपूर की इनिशियल फिल्मों में थी या अमिय चक्रवर्ती की फिल्मों में थी। एक-दो पिक्चरें आयी हैं जिनमें मुसलमान नार्मल लोग हैं, अच्छे भी हैं और बुरे भी। न नवाब हैं और न शायर। तो यह भी एक रियल एप्रोच है। चाहे वे माइनॉरिटी हैं, उनकी ओर से शुरू हुआ। चाहे आम इंसान हो, चाहे माइनॉरिटी हो, चाहे औरत हो- इन सब पर आप कहीं न कहीं फ़िल्में देखते हैं। ऐसी बहुत सी फ़िल्में इन दिनों बन रही हैं। ये जो दीवार है धीरे-धीरे गिरने लगी है। ये जो सारे सोशल इशू हमारी आँखों से ओझल कर दिए गये थे और सिर्फ मेक बिलीव वर्ल्ड में हमारा जो हीरो एक महल में रहता है और दरवाजा खोलते ही बाहर पैर रखता है तो मालूम हुआ कि स्विटजरलैंड में है। वह हिन्दुस्तान की सड़क पर चलना भी पसंद नहीं करता, इसलिए कि अगर आप हिन्दुस्तान की सड़क पर उसकी शूटिंग करेंगे तो पीछे से कोई गरीब फ्रेम में निकल सकता है और वह अच्छा नहीं लगता। लेकिन अब धीरे-धीरे लोग इसमें से हट रहे हैं। नयी जनरेशन में एक अवेयरनेस आ रही है। नो थैंक्स टू अस! हमने तो बड़ा गड़बड़ किया है। हमारी जनरेशन ने सोसाइटी को बड़ा निराश किया है। हमारे माँ-बाप जो थे वे बड़े आइडियलिस्ट लोग थे। वे आज़ादी के लिये भी लड़े, जेल भी गये, और वे सोशल जस्टिस के लिये भी बात करते थे। हमें लगता था कि इनमें दुनिया की

अक्ल ही नहीं है। मिडिल अर्बन क्लास ने बहुत प्रोग्रेस की है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन ऐट व्हाट कॉस्ट? जो चीजें थ्रू लर्निंग और जो प्रोसेस ऑफ़ कॉसमॉस ऐसे ही हममें आ गयीं, सुनकर कहीं कान में पकड़ गयीं, जो बातें आयीं वे हमने नई जनरेशन को दी ही नहीं। हम उनसे क्या शिकायत करते हैं? मैं कॉलेज में जाता हूँ तो यंग लड़के-लड़कियों से पूछता हूँ, “डू यू लव इंडिया?” सब कहते हैं, “हाँ, ऑफ़ कोर्स!” “अच्छा, एक बात बताओ दोस्तों। तुम्हें इंडियन लैंग्वेज अच्छी नहीं लगती। अगर आदमी हिन्दी ठीक से बोलता है तो लगता है उसमें कोई गड़बड़ है। हिन्दी ग़लत बोलने का मतलब है आपकी अपब्रिंगिंग अच्छी है।आपको हिन्दुस्तानी भाषायें पसंद नहीं। आपको हिंदुस्तान का संगीत नहीं पसन्द। आपको हिंदुस्तान के डांसेज नहीं पसन्द। आपको हिंदुस्तान का फोक लोर या फोक सॉग इंटरेस्ट नहीं करता। माइथोलॉजी को आप ओब्सलीट चीज़ समझते हैं। तो क्या पसंद है आपको? पेड़- पौधे? सड़क? वे तो हर जगह होते हैं। व्हाट मेक्स इंडिया, इंडिया? ये ही चीजें तो हिन्दुस्तान हैं। और क्या हैं? हमने बचपन में देखा-सुना था तो हमारे दिल में उसकी कद्र पैदा हुई। आज कितने बच्चे हैं जो अपने माँ-बाप को किसी संगीत सम्मलेन में जाते या घर में अच्छा साहित्य पढ़ता देखते हैं? उन्होंने देखा ही नहीं। बच्चे वह नहीं करते जो हम उन्हें कहते हैं। बच्चे वह करते हैं जो हम करते हैं। बम्बई में हाल यह है, मैं जानता हूँ लेकिन नाम क्या लूँ उन लोगों के, उनके यहाँ जो किताबें हैं वे उनके इंटीरियर डेकोरेटर ने खरीदी हैं; परदे और सोफ़े से मैच करती हुईं!

आपको मज़ाक लगेगा लेकिन मैं सही बता रहा हूँ। इस माहौल में बच्चा पलेगा तो इसके बाद हम उससे कैसे शिकायत करें कि तुममें वैल्यूज नहीं हैं? अरे भाई, वह समझेगा लेकिन नो थैंक्स टू अस। आज की जो यंगर जनरेशन है, मैं दिल से कह रहा हूँ और यह मेरा कन्विक्शन है कि वे हमसे बेहतर इंसान हैं। हमने उसे बिल्कुल मटीरियलिस्टिक, करप्ट, कम्युनल, कास्टिस्ट, एक्सप्लॉइटेटीव, डिसऑनेस्ट समाज दिया है। उन्हें इस बात से बहुत गुस्सा है और यकीन मानिये कि वे अपनी आने वाली पीढ़ी को इससे बेहतर हिन्दुस्तान देंगे। यह मैं आपको पूरे विश्वास के साथ कह रहा हूँ। आज की जनरेशन को मेलोड्रामा पसंद नहीं है, न फिल्मों में और न रिश्तों में। इसलिये कि वह जानती है कि मेलोड्रामा में झूठ बोला जाता है। वह सच की तरफ़ जाना चाहती है। वह सच को ढूँढ रही है और यह मुमकिन नहीं कि उसे नहीं मिले। जिस दिन उसे सच मिलेगा वह समाज में भी रिफ्लेक्ट करेगा और फिल्मों में भी। इसलिये मैं विश्वास करता हूँ कि आने वाले वर्षों में हमसे बेहतर फिल्म बनाने वाले और आपसे बेहतर फ़िल्म देखने वाले होंगे।

शुक्रिया!

&&&

***

**Bharat Ratna Prof. C.N.R. Rao **

Shri Lalit Pande, Valdiya *sahib*, *up kulapati* ji Joshi ji, *municipality ke adhyaksha mahoday* Joshi ji, my old friend Mr. Arvind Pande, so many other friends here, friends of Almora, my young friends, ladies and gentlemen!

I am very grateful to the organizers who have asked me to give a talk in memory of Mr. B. D. Pande whom I had known. When he was Cabinet Secretary, I always knew him because of his little beard, I don't forget. The beard I discovered in the photograph here, very nice beard. I always remember, when he was on the top he was a very efficient, very capable member in the government I met. Even the other day I was telling somebody that how can we of so many Cabinet Secretaries, I admit I have met many of them, but I never met people like Pande ji any more. A wonderful officer, an excellent, capable, very considerate, very efficient, very calculative. I am glad to give here a talk in his memory. And much more so to give a talk in Almora, the centre of learning of Uttarakhand. It is a knowledge city of Uttarakhand. I have known that Almora has always set a great reputation for education and everyone, I know, always has studied in Almora for whatever the reason. I am very glad to be here.

I am very sorry; I am not speaking in Hindi. I can speak a few words, but I cannot give a speech continuously without break and mixing in with it a lot of English. So I am going to speak in English. You will pardon me for that.

I will talk about science in India. Where are we in science today? Those who may not remember, let me remind you, we got freedom on August 15, 1947. I just had entered the college at that time. I was very young, only fifteen years old when I entered the college, at a very young age. We all were looking for a new India, but nobody knew what that India was going to be. Slowly India started doing things, few institutions started coming, but what was amazing there was no money there. There was poverty everywhere. You will not believe it, in Bangalore city there was rationing. Food was rationed, clothes were rationed, and nothing was available when we got freedom. I still remember that you had to influence people to get one kilogram more of something. Those days were very difficult.

We have come away from that. Today India is no longer in that position. There was only one university in my state. If you wanted to study science you studied in Bangalore, you study humanities you have to study in Mysore. That was one reason I left my state and went to Banaras in the university which was a very wonderful university at that time. Everything was in short supply- number of college, food, and no matter what! But what was amazing was that there was tremendous hope. Somehow there was a hope that something will come up in India.

What is interesting even now historically it is this poor India which affirmed its space in science. Amazingly, Mr. Pandit Nehru, whatever he may have said anything else, you may agree with him or disagree with him, it doesn't matter. But as far as his faith in science that the future of India is closely associated with science, nobody can doubt his faith. This one man was

more convinced about science than scientists! Absolutely terrific! Anyway he passed a resolution in the government where the Parliament said that this country will accrue all benefits of science for the people of India. This is unbelievable since policy of our education. I still remember that. Story of all big institutions and so on.

But Anyway, I did my Ph.D. in America and then post doctoral work at the University of California, but I came back to India in 1959. I was exactly 25 years old. I just joined there as a member of staff in the Indian Institute of Science. But there was absolutely nothing. Absolutely no facilities! No equipment, there was no spectrometer, no refractometer; in fact nothing there except books, beakers, test tubes etc. How do you do outstanding research in a place when there was nothing? It was a real problem for me as I had a very high hope of doing something in India. I gave up other opportunities in America including faculty positions in some leading universities. Instead of that I decided come back to India for various reasons. I thought I must come and build a fantastic institute in India. And so having done that what are you

going to do? But despite this I did all kinds of little things. Reading papers, writing books, borrowing, and all kind of tricks I used. Going, all over the places, spectrum here and spectrum there, going to Prof. C V Raman and asking him for help and get something from him, all kinds of places and trivial things and published some papers. In fact some of us became scientists in classic because of the paper that I had published in 1960, a long ago.

Then I had to decide what to do. I decided to pick up, I decided to pick an area, where my doing work in India without much facilities, and still make a big contribution. And that is how I picked the area of Chemistry of solids; the subject didn't exist at that time. Everybody would say there is a solid state physics, there is a solid state chemistry, and they exist. But hardly anybody knowing and working on it. I was an early working on which people think grandfather of the subject today. In fact, there is one of the important things in India to be successful, I always say, pick a lonely road; don't be in a crowded area. Everybody works, gets Ph.D. and post doctoral work in same area. It becomes much boring. Everybody does the same thing. Nobody looks at you. You may publish good papers, but nobody reads. That is the problem today.

So just publishing is not enough, just doing work is not enough, but competing in with rest of the world has become essential to succeed. Therefore, I give advice to all young boys and girls that pick the lonely road. In fact I always read a poem of Robert Frost:

"Two roads diverse in a yellow woods,
And sorry I could not travel both.
I took the one less travelled by,
And that has made all the difference."

That is very important to me. So that is how I have come up. Today, of course, I have achieved more, I publish more in this world than any other person on my subject including all the Americans and even now I publish about 25 papers in a year and I still am excited in a very big way. I am very happy about that.

In fact it so happened that the other day, 2-3 years ago, I was coming home after giving a talk in an international conference. At a European airport somebody came and told me, "Professor Rao! I heard your talk. Very nice. You know I want to tell you there was some man of your name who published this paper in 1960 with your name! A very important paper! I guessed now he is dead!" I said no-no, dead not!

Anyway, coming to serious things. Having done all this I must have seen and witnessed in India the creation of the very first IIT. When the first IIT was created, I still remember, Sir J. C. Ghosh, the Director of Indian Institute of Science Bangalore and my professor also, went to Khadagpur to start a new IIT. I also went. I was one of the first batch research scholars for few months at IIT Khadagpur. Many IITs have come, many institutions have come.

Then what has happened that India has become great? Mr. Arvind Pande may remember that in Rajiv Gandhi's time, when I used to be Chairman of the Scientific Advisory Council to the Prime Minister. We got the feeling, may be in 1988, late 1980s that India has come away. Not bad, things are looking good, things are looking better. What suddenly changes? Geo-political scenario changed, Russia disappeared, Soviet Union disappeared, globalization took over, China has come up like a, my God! I can't say what the adjective would be! Extraordinary happenings! Large scale investment in every area you think of. Then South Korea which got freedom in 1947, exactly at the same time as India, has come up. In fact, South Korea is one I would like to compare all this. Can we be as good as South Korea? They have beaten Japan's halo. They are better than Japan in many things. South Korea has become fantastic and scientifically advanced country. Very advance. China on the other hand is advanced in large numbers. See, for example, a university. They gave me an honour. I got a medal of the Academy of China last year or two years ago. I had gone there to receive it and visited two-three places to give lectures. I

asked them, Mr. Joshi will be interested, *"bhai apke chemistry vibhag men kitne Professors hain? Kitne PhD students hain? Wo bole 600-700 karta hai.* And how many in Physics? There are also about 600 students! How many professors? 250 professors in Physics! These numbers are threatening. In fact, in the Institute of Chemistry, (I have been associated with that, I know all the people there and they know me also very well, a very famous institute in Beijing) the number of PhD students is about 2,200! In one institute! And equipment? Any equipment you want. Once I asked my friend Bai Chunli (he is President of the Chinese Academy of Science), "Chunli, what is it you are doing?" The world's largest number of science graduates and engineering graduates come from China. I hope you know that. They have beaten everybody's halo. America is nowhere. What about the PhDs? Last year they produced 20,000 and this year 21-22,000 PhDs. They want to produce 30000 in the next three years. America produces 23000 PhDs per year. We produce 8000 PhDs per year. Now I think eight thousand is fine. That's why I was joking with one of my friend that what will you do? Every sweeper in the street will be a Ph D! What will they do? *PhD karke kya karega wo bechara?* He said I don't know. So difficult it is! Once I asked my friend, President of the China Academy. He held the secret with him. In India if we do this there will be a revolution.20,000 PhDs in the streets without any job!

In fact China wants to become number one. They want to become number one in science. They are the world's biggest army, they are number one in sports (in Olympic last time) and they say they want to become number one in science. The way they have proved it by producing the world's largest number of science graduates. Now they are number two in science (15.5 % of the world's scientists is produced by the United States, nearly 15 % is from China and India is 2.5%). China was also 2.5 % fifteen years ago. For 2.5 % is not close to 15 %. In a year or may be two China will take over America. The biggest population of scientists! But quality is different. Nobody can beat the

United States. The United States leads the world in the quality of science. China is way behind, but they will come up. They are playing hard. The quality is improving in a way they are calculating it. One of my friends wrote an article in 'Nature' some years ago. He says that top 1% of the papers of the world, highly cited papers, in that India had less than 1 % contribution. America had 64% contribution. China was also 1% like us. Now they have come up with 5%-7 %. They have gone up, but we are still 1%, still very low. So this is the problem.

In one minute I will try to summarize the kind of competition India is facing. If you want to beat anybody be competitive, but there is no point in competing with the numbers. Please don't worry about China, let them produce. We should improve the quality. But quality in every sphere of life is something that is not very good in India, mediocrity somehow runs our world. Everywhere mediocrity! In science, in education. More schools but bad schools, more IITs but second grade IITs. What is amazing to me is that there is not a single IIT which could be compared to the Massachusetts Institute of Technology or the University of Cambridge where I am still a Professor, can tell you. Why is that? It is not that we have no brains. After all we have invested. I will not go into that, but the main problem is that we have been suffering from mediocre performance in science and education.

I must add education today because without education science cannot survive. Many of you may or may not remember that during Rajiv Gandhi time, Arvind Pande may remember, P V Narasimha Rao was the minister for education. He was asked to write a new national policy for education. In that one of the things it says is, "India will invest 6% of its GDP on education. Then it was 2% and it is 2% even now. No change in that investment in term of money! India's every Prime Minister says to invest for education but it is actually very poor for education and science. Even this year there is a big cut in education. I don't want to speak about that. I don't want to speak politically,

I am not a politician. But the fact remains that they have not invested enough. Then what do we do? This is one aspect.

Second, our value system for education. How many Indians or citizens, like in Almora or in Bangalore, have gone in a procession for better education for their children? They have never done that. They have gone for better roads, law and taxes; better anything else but not education. Education, I think, should become a social movement. Somehow the society has to take interest in it in such a way that the government concerned is afraid of the people. Then they will give improved schools and provide better education for the children. Right now any school is ok, anybody can teach. Even today the number of single teacher schools in Karnataka alone is about 2000. How will a school do well with one teacher even at the primary level? I think this is something I wanted to mention. This is one of the reasons why we are not doing well in education.

Other than that is the investment alone. There are many other aspects. Michael Faraday, I hope you all know him. Michael Faraday to me is the greatest scientist that ever lived. Nobody can beat the performance of Michael Faraday in science. In the history of science there has been nobody and there will be nobody else, because the number of works he did in his life. One man sitting alone wrote four hundred and fifty papers and people say if only he had lived in the twentieth century today he would have got five or six Noble Prizes. I would have acknowledged three-four Noble prizes for him in the twentieth century. He discovered electricity, the law of electrodes, discovery of benzene, the number of things he did is extra-ordinary.

In science, you see success is not based upon what you do but the problem you pick is the one that decides what quality of science you have. You will have to pardon me, I am not criticizing any individual or any group of people, and I think Indian scientists pick poor problems. My general thinking

is that the wonderful job of a problem is that nobody is interested in it. They have answers to questions never asked before, lots of answers, and no questions! In fact, very good work has been done in some unwanted areas, useless areas. This is very common in India, even today. That is why we have been beaten by China. . Now we have to think how to invest in right areas. We have to learn concentrate upon our own problems.

Funding has to be improved. More than that what about scientists? Are the scientists perfect in India? I don't know how dedicated they are. Are they working hard enough? I am not sure. I don't think we have been working hard enough. This is my general complaint about my colleagues, not an individual, but as a group they don't work enough.

Another important thing in an institution, I find, is generosity. Generosity is extremely important in science. Unless you have generosity to help the other persons to do as well you have done or even better, science cannot rise. In fact, all the history of science is full of instances where a student beats his teacher's halo; his performance because the teacher help their

students come up like Faraday and Davy is a good example. Sir Humphrey Davy gave birth to Faraday. Faraday beat, Davy academically, in all respects in academics. Davy was no compare to Faraday.

I think there are many such examples. We have to encourage young people more in such a way that they get all the opportunities and not be jealous. You see what is happening is, I don't know about Uttarakhand but everywhere I am noticing that if you pick an average person as a head of something, he does not prefer anybody better than himself in his department. So you beg somebody inferior to you. He is already in such a level that anything inferior can be pretty low. That happening in the universities, that happens to our institutions. Recruiting, promotion, everything is based upon considerations other than academics.

Second, generosity. Why are we so jealous? I also become jealous; I will be dishonest if I don't say that. When a student or an assistant professor in my department does much better than me, I do feel a little bit jealous. But to beat that guy I do better work. I think we have to compete with the young fellows and the older fellows and show them how we can be as good and not be jealous. We should help people to come up and I am just mentioning this why is it India is not doing so well.

Other than investment and so on there is a joke. The joke is what is the common quality of some people? It is not about Uttarakhand, but some other parts of India, don't want to mention here. The people are very angry. Whatever you say they become very angry. They answer in a very angry tone, always ready to fight. This anger is not very good for science. You have to be happy mind and not to be angry at all. In fact, if you are angry you cannot do any science. The day you fight with your wife that day you cannot do anything in the lab. So minimum fight.

Having said all this in spite of all this has said, the problems they have, can one succeed in India? I am worried about young people, they are the future. How will they do? Each one of us has his own goal, morals and icons. In my own life this is true, I am telling you, I always think about great men and great women of science. They have always encouraged me. You may not believe but that is true.

I always wonder how for example Ramanujam with no college education, *class twelfth ke baad usko admission nahin mila college men*, but he did more mathematics than most mathematicians of the world. Three thousand and three hundred conjunctions! Nobody has proved him wrong. He is now considered one of the trinity in mathematics in the world. How he did that, I wonder. I had gone there (a place near Kumbhkonam) with a friend two years ago. What a miserable hole it is! Not like Uttarakhand. A terrible place. How did he do mathematics in that place is amazing.

Similarly Professor Raman whom I knew very well. I owe a lot to Professor Raman because he was the first men to recognize me in my life. I will never forget that. Professor Raman, when he was an accounts officer, or whatever he was called, in Nagpur he worked in the account office under the British government. In the evening he would go to Science College and do research. And he became Fellow of the Royal Society as far as nearly 35 years. Not easy to become a FRA even for a year, very difficult. Then he goes to Calcutta. During evening time he works at 'Indian Association for Cultivation of Science.' Much of his work winning Noble Prize he did in the evening hours, not based upon a full-time job of a scientist. Absolutely amazing!

Even more interesting, J C Bose in the year 1895, 19th century, made a discovery of telegraphy in Calcutta at Presidency College. He demonstrated how it works. Unfortunately did not get a Noble Prize, Marconi got the entire Noble Prize. Without Bose's work Marconi couldn't have done what he did.

But whatever that was, this man in 1895, before the discovery of electron, electron was discovered in 1897, this man in India discovered a major thing in Calcutta. These are the people, very inspiring people in India.

The equal or bigger name in the west is Faraday. How Faraday did so many things with nothing. He had only 3 years schooling! Trained himself to become a scientist! So extraordinary performance! So extraordinary things in quantity and in quality, everything, and created new areas. In fact, many things we do today we forget that Faraday had started it. You know electrolysis, anode, cathode, magnetism, paramagnetism, diamagnetism; all these words were coined by Faraday.

He was a very simple man. His greatness never fetched him anything. Queen Victoria asked Michael Faraday, "Mr. Faraday I would like you to be knighted, give you Knighthood. He says, **"My dear Queen, thank you for this great honour you are doing me, but I am just Mr. Faraday. Everybody calls me Mike; let me be like that, I don't want your Knighthood.** He doesn't take it. Even much bigger discovery is that the Royal

Society was a great place even today. The Royal Society asked Faraday**, "Mr. Faraday we would like you to become President of the Society**", the highest honour a scientist in Britain could get at that time. Today it may not be the case. He said, "thank you so much for this honour, certainly wonderful to be asked to be the President, but my presidency is the laboratory, so please excuse me." I think how many of us, Indians would think this way?

Here every professor wants to become a director. Every director wants to become director general. Director General wants to become secretary. He wants to run the country. Why everyone wants to run a country? I don't know why can't we live as people and do our work as a professor! It is actually interfering with the science.

My lecture is about science. The other interest, interesting things other than excellence, other than academics, other than professional attainment, somehow attract people. Everybody wants to become the president. Somehow that is unfortunate. Anyway, I hope this won't continue and young people will change things and really do something. In fact when I used to teach in IIT Kanpur, I was a very young man, only at the age of 29 or 30 years I became a professor there and head of the department. I don't know how they made me then. Nobody gets a job at that age! I had written two books and kinds of things. That doesn't matter. When I used to teach there, the students were so brilliant!

In fact IIT students today are not so good because they all go to the coaching classes. Those days there were no coaching classes and there were really bright students. A big difference in quality. Twenty to thirty percent of the all students whom I taught at IIT Kanpur, if they would have stayed in and worked for India, India would be different. They all served in the entire world. Most of them quit science; engineering and they make money in all kinds of things. They are very good at it. In fact, computer science in America is mainly

by these IIT graduates and lasts because of them. I hope such people of worth will work for India.

People ask me, "Now you are 81 years. How come you are still working?" To me there is no other way to live. A wonderful life! Being a scientist I am one of the happiest man, I know. In fact, I don't know how many people are as happy as I am. The science is a wonderful profession, keeps you very happy, very engaged. I have no regrets. I will never give up science because of that. It is wonderful thing.

In fact, my wife showed me the other day an interview of my great friend and a great musician Bismillah Khan. Bismillah Khan used to play *shehnai* on the banks of Ganges. Some people asked him, "What are you doing?" *"Bhai, bhagwan ke liye baja raha hoon"*. He was a very great man, simple man. He didn't value for money, no account. He didn't even know how many people get in his house. Every time 30-40-50 people ate in his house and he had no control of anything. He was asked just before he died, *"Khan Sahib, boliye, bhagwan se kya prarthana karte hain aap?"* He said, "O' God, let me be in the world of music as long as I am alive. Wonderful! I feel exactly like that, "O' God, let me be in the world of science as long as I am alive." There is no other way.

Also about age. People say you are about 81 how come you are working? Well you know age has nothing to do with the energy. Age has nothing to do

with the motivation. Age has nothing to do with the quality of work. In fact, I have done the best research after my 70th year. My citation, everything in my life has increased after the seventieth year. So I always quote Kabir. Again you all know that, ***"mann men Ganga, mann men Kashi, mann men snaan karo."*** That is very correct that everything is in the mind and I hope people will make up their mind. When you are old you are young and young when you are old. Ok?

But also, science has given me one thing in my life which you may not well say, people may not understand, a way of being unselfish. You see if you have to be fearlessness in the world, you have no selfishness. A little bit of selfishness brings you fear. So fearlessness and selflessness always go together and this selfishness is something which is very dominant in Indian society. That is why China by rule, by bulldogging selfishness they have brought in selflessness. It is not that the people are not selfish. By law, by the way the government operates make sure that there will be no selfishness. Admirable the way, they do things. Here I don't know.

As Tagore said long ago, I even have a poem if you want me to read, about selfishness. In 'Gitanjali' he writes:

"I came out alone on my way to my tryst.

But who is this that follows me in the silent dark?

I move aside to avoid his presence but I escape him not.

He makes the dust rise from the earth with his swagger;

He adds his loud voice to every word that I utter.

He is my own little self, my lord, he knows no shame,

But I am ashamed to come to thy door in his company."

It is like that. The reason I mentioned this is somehow we Indians have to learn to be a bit selfless if this country has to survive. Not just survive, do well because in about 15 years I hope you have heard about it, those who are old like me, I am too old, I need not to worry. After twenty years I won't be around, but all the young children will be in their prime and youth till then there will be a big population growth. There will be more people than at this time. There will be additional 4 to 5 crore children coming for higher education in less than 15 years. I want you to know and what we have done for that? We have to worry about that.

I requested every Prime Minister including the present Prime Minister please do something to draw a roadmap for our children. What will they do, particularly the children in our rural areas, where the majority live? Brilliant young children! What have we got for them? That is what India requires. Give them a task, true education, science, technology, engineering, other skills, other areas and let them try. There are many challenges. Unless we answer these challenges in the next 10 to 15 years in India, India will have a tough time. Time for those to me is not an easy thing. In fact there is a very famous quotation. I wish to read it out today. I read it out. Time is something you don't value, but time is the most valuable thing. Faraday said about time:

"What are the longest and the shortest thing in the world?

The swiftest and the slowest?

The most divisible and the most extended?

The least valued and the most regrettable

Without which nothing can be done

And with which we do all big and small

And give life and spirit to everything"

It is great. It is what the creator thought so valuable that he has given a limited amount to us. If creator's time wouldn't have been important we would live five hundred years. I think this time is not available for India. In fact, the other day in some very important meeting, about a month ago, not recent, everyone you may not believe it, by the way not about India but Japan. If you know the main worry of Japan is that Japan is not doing well. The worry of Japan is that it has become a second grade competent to South Korea and China. J*apan ka bhavishya kya hai? Japan ki dunia abhi khatm ho jati hai das saal men.* In fact this is what they feel and they worry about it a lot. And here we should very much more. The other day there was a meeting. In fact they wanted me to become a member of a group that help and I agreed. How to improve innovation in United Kingdom? Found the same revelation in the United Kingdom. Britain is no longer as it used to be a hundred years ago or fifty years ago. England was supposed to be the smallest area of land with the highest ideas in the world. More Noble Prizes per unit square mile than any other country but not anymore. So they want to know how to improve and do. But I am helping them in my own way. Brazil is doing the same thing. Well, recently suddenly with going up now Korea and Brazil have stopped progressing. Thanks to the present presidency. It is not allowing education

and science come up too much. Are we doing the same things? I don't know. You think about it. We have to help our young kids in better education and leave them alone. Don't forget the best institution is that brings bright people and leave them alone. James Conant long ago said, people asked him, "Dr Conant, how did you build Harvard University to such a great centre?" He said, **"No, I did nothing and just got the best minds and let them alone"**. I think we should have done that. This is something we should learn that.

Thank you so much.

***

डॉ. सुनीता नारायण

“पर्यावरण संरक्षण और विकास”

धन्यवाद डॉ. जोशीजी और ललित!

मुझे बहुत अच्छा लगा कि मैं यहाँ आ पायी। बहुत दिनों से मन था। जब मैंने अपने काम की शुरुआत की थी उन दिनों मैं अनिल के साथ बहुत बार गोपेश्वर, चमोली और अल्मोड़ा भी आई थी। उसके बाद हमारे रास्ते कहीं अलग हो गए और मैं आ नहीं पायी। कल ललित के साथ थोड़ा देख-समझ कर भी बहुत अच्छा लगा। बहुत-बहुत धन्यवाद!

मैं स्व. बी.डी. पाण्डेजी को तो बहुत अच्छी तरह नहीं जानती थी लेकिन मुझे बहुत ख़ुशी है कि मैं आ पायी, क्योंकि मैं ललित को तो जानती हूँ और अब अनुराधा को भी जानती हूँ। मुझे लगता है कि जो उत्तराखण्ड सेवा निधि का काम रहा है वह देश का बहुत ज़रूरी काम है क्योंकि हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि हम किसी तरह लोगों की सोच बदलें। सोच बदलने का काम शिक्षा से ही होगा। मगर शिक्षा ऐसी चाहिये जो एक तरफ़ वैल्यूज़ देगी और दूसरी तरफ हमारा जो परिवेश है उसकी सच्चाई लोगों तक, खासकर बच्चों तक लायेगी। मुझे लगता है कि आपका स्कूल के अन्दर जो काम रहा है कि किसी तरह वह सच्चाई बच्चों तक जाये, वह बहुत बड़ा काम है।

जैसा मैंने पहले कहा, हमारे देश में जो सबसे बड़ी चुनौती है वह यह है कि हमें किसी तरह सोचना पड़ेगा कि हम कौन सा रास्ता अपनाएं। क्या रास्ता हमारे लिए सही है? पूरी दुनिया में आज यही बात हो रही है। हमारे देश में जब विकास और पर्यावरण की बात होती है तो बहुत हद तक विकसित देशों में पर्यावरण के बारे में जो सोच रही है उसको खींचकर ले आते हैं।

हम समझते हैं कि हम उसे अपने देश में लागू कर पाएंगे। मगर यदि आप इस देश का पिछले बीस-तीस साल का अनुभव देखें तो पर्यावरण के सवाल पर हम बहुत हद तक लड़ाई खो रहे हैं। हम पर्यावरण की लड़ाई जीत नहीं रहे हैं। मैं समझती हूँ कि हम लड़ाई इसलिए हार रहे हैं क्योंकि हम आज भी नहीं समझ पाये हैं कि पर्यावरण के सवाल को विकास के सवाल से जोड़कर कैसे आगे बढ़ायें। लोगों से जोड़कर कैसे आगे बढ़ायें। आज भी हम पर्यावरण के सवाल को विकास और पर्यावरण के बीच कहीं खोते जा रहे हैं। इसलिए मैं जब भी सोचती, लिखती या बात करती हूँ तो बार-बार यही कहती हूँ कि दो मेल के पर्यावरण की सोच रही है। एक विकसित व अमीर देशों से आयी है जिसे मैं अंग्रेज़ी में **'मिडिल-क्लास एनवायरनमेंटलिज्म'** (middle-class environmentalism) कहती हूँ। कि हम चीजों को पहले बिगाड़ते जाएँ और फिर सही करते जायें। उस सोच के अन्दर अगर आप देखें तो पूरी दुनिया आज पीछे ही रहती है। उसका लक्ष्य कहीं न कहीं दूर होता जाता है। मेरे दिमाग में जो बात है उसे मैं आगे और समझाऊँगी।

दूसरी तरफ है **'एनवायरनमेंटलिज्म ऑफ़ द पुअर'** जो गरीबों, किसानों, आदिवासियों और लोगों का एनवायरनमेंटलिज्म है। इस सोच के साथ अगर हम आगे बढ़ेंगे तो हम अपने पर्यावरण को बचा सकेंगे। नहीं तो, जैसा मैंने कल अल्मोड़ा शहर के अन्दर देखा, आप दिल्ली से बहुत दूर नहीं हैं। आपके शहर के अन्दर भी उतना ही कूड़ा, कचरा और प्लास्टिक

है। आपकी हवा कोई साफ़ नहीं है। मेरी नाक सेनेटरी- इंस्पेक्टर की नाक है। मैं आपको बता सकती हूँ कि हवा में कितना डीजल, कितना कैरोसिन और पेट्रोल है। आपकी हवा इसलिये साफ़ है कि कुदरत ने आपको इतनी बड़ी विरासत दी है। मगर दिन बहुत दूर नहीं है जब आप भी उतनी ही बुरी हालत में होंगे जितनी दिल्ली होगी। मुझे लगता है कि यह सब सोचकर आगे बढ़ें तो पर्यावरण को किसी तरह पकड़ सकेंगे।

आज दुनिया में सबसे बड़ी चिंता जलवायु-परिवर्तन है। इस पर लेक्चर देने की कोई ज़रूरत नहीं क्योंकि आप देख रहे हैं कि आपके आसपास क्या हो रहा है। आज जब वर्षा आती है तो इतनी ज़ोर की आती है कि उससे उत्तराखण्ड में बाढ़ आ जाती है, चेन्नई में बाढ़ आ जाती है। दिल्ली में जिस दिन वर्षा होती है हम घर से नहीं निकल सकते क्योंकि हमारे यहाँ पानी भर जाता है। सर्दी पड़ती ही नहीं लेकिन जब पड़ती है तो बहुत भीषण सर्दी पड़ती है। पिछले साल किसानों की इतनी बुरी हालत हुई है क्योंकि जहाँ वर्षा नहीं पड़नी चाहिये और जब वर्षा नहीं पड़नी चाहिये, वर्षा पड़ी है। मेवात का इलाक़ा दिल्ली से ज्यादा दूर नहीं है। वहां मैं पिछले साल गयी। अगर आप किसानों से बात करें तो आपको समझ में आयेगा कि जलवायु-परिवर्तन का असर किस तरह से लोगों की ज़िन्दगी में पड़ रहा है। किसानों ने मुझे बताया कि तीन साल से बेमौसमी वर्षा हो रही है। अप्रैल में, जब फ़सल बिल्कुल खड़ी रहती है तब ओले पड़ते हैं। अपने कर्ज लेकर इतनी मेहनत से फ़सल तैयार की लेकिन रात

को ओले पड़ते हैं और सब ख़त्म! किसान फिर मेहनत-कसरत करके, किसी तरह पैसा जोड़कर दुबारा फ़सल उगाता है। उन किसानों ने मुझे खेत में ले जाकर दिखाया कि जहाँ पूरे साल में केवल 500 मिलीमीटर वर्षा होती है वहां सितम्बर के महीने में, जब खेतों में फ़सल पूरी तरह कड़ी थी, केवल 8 घंटे में 400 मिलीमीटर वर्षा पड़ी! आप सोच लीजिये, पूरे खेत के खेत ख़त्म! सब जगह पानी ही पानी! सब जगह प्रलय! यह किसान आज ही सरकार से कुछ नहीं मांगता। उसने आज भी कहा कि चलिये, कुछ न कुछ और इकट्ठा करेंगे, क्लस्टर-फार्मिंग करेंगे, कोई न कोई तरीका ढूढेंगे। मगर हमारे देश में यह बढ़ता ही जा रहा है।

आज अग्रेरियन क्राइसिस है। जो सबसे अमीर किसान हैं उन्हें सरकार द्वारा पिछड़ा घोषित करने की मांग हो रही है, चाहे पटेल हों या जाट हों। मैं मानती हूँ कि किसान की ऐसी बुरी हालत सरकार की गलत नीतियों के कारण तो है ही मगर मौसम का प्रलय भी बढ़ता जा रहा है। किसान या गरीब के कारण आज जलवायु-परिवर्तन नहीं हुआ है मगर वे इससे सबसे ज्यादा पीड़ित हैं। जलवायु-परिवर्तन हो रहा है और बढ़ता जायेगा। यह आप मानकर चलिये।

वैज्ञानिक यह कहते हैं कि जब जलवायु-परिवर्तन का असर आयेगा तब मौसम ज्यादा अनियमित और मानसून ज्यादा बेमौसमी हो जायेगा। मैं बार-बार यही कहती हूँ कि पहले चिदंबरमजी और आज जेटलीजी इस देश के वित्तमंत्री नहीं हैं। इस देश का केवल एक वित्तमंत्री है। वह है मानसून। अगर उस वित्तमंत्री को बुखार चढ़ता है तो इस देश की क्या

हालत होगी, वह आप देख रहे हैं। इस सवाल को आप नकारिये मत। मत सोचिये कि यह भविष्य में कभी होने वाला है। इसे हम देख रहे हैं और हमारी पीढ़ी देख रही है। इसलिए देख रही है कि जो विकास पूरी दुनिया में हुआ है उस विकास के कारण आज जलवायु-परिवर्तन हो रहा है। हम जानते हैं कि विकास के लिए आज जो ईंधन इस्तेमाल होता है और उस ईंधन के कारण जो प्रदूषण होता है उसी से जलवायु-परिवर्तन पूरी दुनिया में हुआ है। हम यह भी जानते हैं कि कुछ देश चुने हुए विकसित देशों का जो रहन-सहन है, जो विकास है उनके कारण आज पूरी दुनिया में इस तरह की स्थिति पैदा हुई।

हम यह भी जानते हैं कि पिछले साल जब पेरिस की गोष्ठी हुई थी उसके अन्दर हमने एक किताब प्रकाशित की थी जिसका शीर्षक हमने दिया था 'कैपिटान अमेरिका'। कोई भी यह नहीं देखता है कि अमेरिका जैसे देश जब कह रहे हैं कि जलवायु-परिवर्तन के बारे में वे कुछ सोच रहे हैं तो उनका एक्शन-प्लान क्या है? उनका क्या मतलब बनता है? हमारी किताब से एक चीज़ बड़ी स्पष्ट निकली कि जलवायु-परिवर्तन के लिए उनका जो एक्शन-प्लान है वह कुछ नहीं है। वह ऐसा बेकार पेपर है कि आप डस्टबिन में भी नहीं फैंकिये! कोई फायदा नहीं है उसका क्योंकि वह 'मिडिल-क्लास एनवायरनमेंटलिज्म' का तरीका है। वह होता है कुछ हम बिगाड़ें, फिर उसे सही करने के लिए कुछ न कुछ करें। वह सही करते-करते हम और बिगाड़ते जाते हैं क्योंकि हम यह नहीं सोचते कि हमारा जो रहन-सहन और उपभोग का तरीका है उसे किस तरह से बदलें। वह सोच कभी नहीं आती क्योंकि वह एनवायरनमेंटल

सोल्युशन (environmental solution) ढूँढने की एक टेक्नोक्रेटिक एप्रोच रहती है। सोच होती है कि हाँ, प्रदूषण है लेकिन टेक्नोलॉजी आयेगी और उसे साफ़ कर देगी। आप अगर अमेरिका का सवाल लें तो यह बात हुई कि वहां की गाड़ियों के कारण बहुत प्रदूषण फ़ैल रहा है। उन्होंने कहा कि हम बहुत कुछ करेंगे। उनके प्रेसीडेंट ने क्लीन एक्शन-प्लान निकाला कि हम पूरी दुनिया को दिखा देंगे कि हमारी हर गाड़ी बहुत ज्यादा फ्यूल- एफ़िफ़सिएन्ट (fuel-efficient) होगी। इससे हमारा जो प्रदूषण है उसे कम करेंगे और जलवायु-परिवर्तन के अन्दर हम लीडरशिप पायेंगे। जो आंकड़े हैं वे दिखाते हैं कि उनकी गाड़ियों की ईंधन की खपत ज़रूर घट गयी मगर उसके साथ ही साथ ईंधन के दाम भी घट गए। इस कारण लोग आज ज्यादा बड़ी गाड़ियाँ खरीद रहे हैं और ज्यादा लम्बा चल रहे हैं। तो इस तरह उन्होंने गाड़ियाँ जितनी ईंधन-किफ़ायती कीं उतनी ही ज्यादा गाड़ियों की संख्या बढ़ी और उतनी ही ज्यादा माइल्स ट्रेवल। आँकड़े दिखाते हैं कि प्रदूषण कम नहीं हुआ। यही स्थिति मेरे शहर दिल्ली की है। हमने सोचा कि नए स्टैण्डर्ड ले आये हैं। गाड़ियाँ नयी बन गयी हैं। उनके उत्सर्जन-मानक बहुत कड़े कर दिए गए हैं। हमारी हवा बहुत साफ़ हो जायेगी। हमारी हवा साफ़ नहीं हुई बल्कि ज्यादा दूषित हो गयी। आज आप अगर दिल्ली की हवा में साँस लें तो आप साँस में ज़हर ले रहे हैं क्योंकि जैसे हमने गाड़ियाँ साफ़ कीं वैसे ही दस गुना नई गाड़ियाँ सड़क पर ले आये। रिजल्ट क्या होगा? यही मिडिल-क्लास एनवायरनमेंटलिज्म है।

आप अल्मोड़ा के कचरे का सवाल ले लीजिये। मैं कल ललित के साथ शहर घूमी थी तो मुझे दिखा था। कचरे का सवाल भी यही है। आप कचरा लायेंगे और सोचेंगे कि वह ग़ायब हो जायेगा लेकिन वह ग़ायब नहीं होने वाला है। हमारी पर्यावरण की सोच में बार-बार यही कमी है। इस कमी के कारण हम पीछे ही रहते हैं, आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। हम किसी जंग को जीत नहीं पा रहे हैं।

इस सवाल को अगर आप फिर से देखें और सोचें कि पिछले बीस साल जो भी हुआ, चलिये हुआ। हम बीस साल पीछे जाते हैं और उसके बाद आगे जाने की कोशिश करते हैं। हम अपनी हिस्ट्री में स्टेप्स रिट्रेस करते हैं, सोच-समझकर आगे बढ़ेंगे और एक नई दिशा से आगे बढ़ेंगे।

मैं फिर आपको 'चिपको' आन्दोलन में लेकर जाऊंगी। जब चिपको आन्दोलन हुआ, 1970 के दशक में, तब दो बातें हुई थीं। दो भिन्न-भिन्न विचारधारायें थीं- एक प्रोजेक्ट-टाइगर और दूसरी चिपको की। पहली बाहर से आयी थी और दूसरी अन्दर से। बाहर से प्रोजेक्ट-टाइगर की माँग थी। जब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधीजी थीं उस वक्त आई.यू.सी.एन. संस्था ने इस सवाल को उठाया कि आपके देश में बाघों की संख्या घटती जा रही है। इनको बचाने की बहुत ज़रूरत है। प्रधानमंत्री इंदिराजी बहुत अच्छी पर्यावरणवादी थीं। उन्होंने कहा कि हाँ, बिल्कुल कुछ करना चाहिये। इसके बाद पहल हुई। प्रोजेक्ट-टाइगर बना, राष्ट्रीय पार्क व अभयारण्य बने। उस पूरी सोच के अन्दर यह था कि हमें जंगल और उसके अन्दर जो जानवर हैं उन्हें बचाना है लेकिन लोगों की भागीदारी नहीं होनी चाहिये। कुछ हद तक बाहर की सोच यह थी कि लोगों से जंगल बचाने हैं क्योंकि अगर आप विकसित देशों को देखें तो वहां जंगलों को विल्डरनेस कहते हैं। वे वाइल्ड होते हैं। वहाँ लोग नहीं रहते, जानवर ही रहते हैं। हमारे जंगल हैबिटैट हैं। यहाँ जंगलों में जानवर भी रहते हैं और लोग भी। मैंने प्रोजेक्ट-टाइगर के दस्तावेज़ पढ़े। मैं समझती हूँ कि कर्ण सिंहजी जैसे लोग थे जिनकी सोच थी। वे लोग इस देश को जानते थे। पहले के जो डाक्यूमेंट्स मैंने पढ़े उनमें लिखा था कि इन जंगलों में लोग भी बसे हैं। हमें उनके साथ मिलकर कुछ करना पड़ेगा। पेपर में बिल्कुल सही था। मगर तब भी एक सोच थी कि प्रोजेक्ट टाइगर आये और और उससे हम जंगल तथा बाघों को बचाएं और लोगों से जंगल को बचायें।

दूसरी तरफ़ आपके इलाक़े से 'चिपको' की सोच आयी। वह कुछ हद तक ज़रूर ग़लत इन्टरप्रेट हुई। मैं जानती हूँ, राधा बहन जानती हैं। मैं उन दिनों यहाँ आती थी और अनिल से मैंने यह सीख ली। अनिल की सोच बिल्कुल स्पष्ट थी। वे एक बार भी डगमगाये नहीं जब उन्होंने यह कहा कि 'चिपको' आन्दोलन जंगल बचाने का आन्दोलन नहीं बल्कि लोगों के हक़ का आन्दोलन है। यह ऐसा आन्दोलन है जिसमें महिलाएं कह रही हैं कि हमें इस जंगल के ऊपर हक़ दो। अगर हमें हक़ मिलेगा तो हम जंगल काटेंगे नहीं क्योंकि जंगल से हमें सब-कुछ मिलता है।

वह आन्दोलन एक पर्यावरणीय आन्दोलन ज़रूर था मगर वह इस देश का पर्यावरणीय आन्दोलन था, जहाँ लोगों ने कहा कि हमारे हक़ से ही जंगल बचेंगे। मगर आप पिछले बीस-तीस सालों में देखें तो हम कहीं न कहीं यह लड़ाई हार गए हैं जो एक माइंड-सेट, आइडियोलॉजी, उसूलों की लड़ाई है। हम पर्यावरण का सवाल ज़रूर आगे ले जा रहे हैं। आज सब चिंता करते हैं पर्यावरण के बारे में। सब चिंता करते हैं कि जलवायु-परिवर्तन हो रहा है और हमें कुछ करने की ज़रूरत है। मगर आज भी हम समाधान उसी छोटी सोच से निकालते हैं कि हम कूड़ा डालते रहें और उसके ऊपर झाड़ू लगाते रहें। हम आज तक इस सोच को नहीं बदल पाए हैं कि हम कूड़ा डालना ही बंद करें। कूड़े का कम्पोजीशन किस तरह बदलें कि वह एक रिसोर्स बन जाये और किस तरह अपने उपभोग और विकास को जोड़कर आगे बढ़ सकें। यह पर्यावरण की जो बड़ी सोच है उसे हम खो रहे हैं।

जब मैं यहाँ आती हूँ तो मुझे सबसे ज्यादा अच्छा लगता है क्योंकि यहाँ जो मैंने कल देखा वे ऐसे सवाल हैं जो मुझे लगता है कि पूरे देश और दुनिया के सवाल बन जाने चाहिये। कल महिलाओं ने मुझे बताया कि किस तरह बंदरों के कारण उनकी किसानी, उनके खेत पूरी तरह से नष्ट हो रहे हैं। आज हमने कैरिइंग-कैपेसिटी (carrying capacity) की बात की। ईश्वर जोशी ने मुझे एक बहुत अच्छी बात समझायी कि हम जानवरों की कैरिंग-कैपेसिटी की बात क्यों नहीं करते? हमें यह सोचना पड़ेगा। इन ग्रामीणों के कारण जंगलों का विनाश नहीं हुआ है। अगर शहरों के कारण जंगल नष्ट हुए हैं तो आप बंदरों को पालिये। अगर आप बन्दर, तेंदुवे या हाथी पालना चाहते हैं तो इन्हें अपने पास रखिये। हमें इस चीज़ के अन्दर विरोधाभास नहीं चाहिये। अगर पर्यावरण बचाना है और लोगों के साथ भी जुड़ना है तो हमें इन सवालों को उठाना पड़ेगा। यह भी कि हमें इनका समाधान ढूढना है। लोग किस तरह अपने पर्यावरण को देखते हैं? इनकी आज क्या दिशा है? वे देखते हैं कि सरकारी वन विभाग का अफसर जो उनके पेड़ों के ऊपर हक़ जमाये है वह लोगों से कह रहा है कि आप पेड़ नहीं काट सकते, आपको जंगल से कुछ मिलेगा नहीं। दूसरी तरफ़ जंगली जानवर उनके खेत ख़त्म कर रहे हैं। अगर हम इस स्थिति को संभालेंगे नहीं, संवाद द्वारा रास्ता नहीं निकालेंगे तो... मैं बार-बार यही सोचती हूँ कि इस देश के लोग इतने शांत हैं। इतने चुप हैं कि हमारे जंगल आज बचे हुवे हैं। मैं होती तो मैं जला देती। मैं यह नहीं कह रही हूँ कि मैं जलाऊंगी। मीडिया के लोग कृपया इसे हैडलाइन न बनायें। मगर हमें इस सवाल को उठाना पड़ेगा। इस

सवाल को उठाने से हमें डरना नहीं है। हमें दुनिया को यह भी कहना पड़ेगा कि हम इस सवाल को इसलिए उठा रहे हैं क्योंकि हमें 'एनवायरनमेंटलिज्म ऑफ़ द पुअर' चाहिये। हमें 'एनवायरनमेंटलिज्म ऑफ़ द मिडिल-क्लास' नहीं चाहिए। 'एनवायरनमेंटलिज्म ऑफ़ द मिडिल-क्लास' वह है जिसमे आप कूड़ा बनाते जाते हैं और फिर उसके ढेर को किसी तरह हटाते जाते हैं। वह ढेर बढ़ता ही जाता है इसलिए आज विकसित देशों के रहन-सहन के कारण और हमारे देश के अमीर लोगों के रहन-सहन के कारण पूरी दुनिया में ऐसा प्रलय आया हुआ है। इस कारण आज ग़रीब की बुरी हालत है और कल अमीर की भी बुरी हालत होगी। यह एक अच्छी चीज़ है क्योंकि जहाँ तक जलवायु-परिवर्तन का सवाल है वह किसी को नहीं छोड़ेगा।

पिछले 150 सालों में विश्व का तापमान 0.8 डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ा है। हमने हवा में जो इतना प्रदूषण किया है उसके कारण इतना तो बढ़ना ही है। वैज्ञानिक कहते हैं कि आपको किसी तरह तापमान-वृद्धि को 2 डिग्री सेंटीग्रेड से नीचे रखना है क्योंकि इससे ज्यादा तापमान बढ़ने पर आज की तुलना में मानसून का हाल बहुत ज्यादा बढ़ जायेगा। अगर हमें ऐसा करना है तो 'एनवायरनमेंटलिज्म ऑफ़ द मिडिल-क्लास' बिल्कुल काम की चीज़ नहीं है क्योंकि इसके चलते आज भी प्रदूषण नहीं रुका है। हमारी बिजली की खपत बढ़ती जा रही है। हम चाहे कितनी भी सोलर एनर्जी लगा लें, अगर बिजली की खपत बढ़ती जाएगी तो सोलर एनर्जी भी इतनी काम नहीं आएगी। इस चीज़ को अगर हम बड़े तरीके से देखें कि किस तरह से दुनिया के अन्दर आज लोग एक नया तरीका खोज रहे हैं और हमारे देश से जो तरीका निकला था कि लोगों को जोड़कर पर्यावरण की चिंता करें तथा उन्हें जोड़कर हम आगे बढ़ें; अगर इस चीज़ को हम खो देंगे तो 'एनवायरनमेंटलिज्म ऑफ़ द मिडिल-क्लास' से कुछ नहीं होगा।

उत्तराखण्ड की जो ट्रेजेडी (केदारनाथ, जून 2013) हुई उसके दो कारण थे। एक, जलवायु-परिवर्तन के कारण बहुत भीषण बेमौसमी बारिश पड़ती है। हिमालय में आज बादल फटने की घटनायें हो रही हैं। कहा जा रहा है कि यह विश्व में सबसे ज्यादा वल्नरेबल एरिया है जहाँ क्लाउड-बर्स्ट सबसे ज्यादा होंगे। वर्षा भी कभी बहुत ज्यादा तो कभी बहुत कम होगी। यह हिमालय के लिए एक बहुत बुरा संकेत है। दूसरी तरफ हम आज हिमालय के अन्दर जो विकास कर रहे हैं- अगर उत्तराखण्ड की बात करें तो आपने केदारनाथ में जिस तरह से विकास किया, जिस तरह लोगों ने नदी के किनारे घर बनाये और जिस तरह से सड़कें और बाध बनाये गये उससे हम उसे और खोखला करते जा रहे हैं। मैं ऐसी पर्यावरणवादी हूँ जो

कहती हूँ कि बाध ज़रूरी हैं मगर ऐसे मत बनाइये कि वे बम्पर टू बम्पर हों। यानी एक बाध बने और बगल में दूसरा शुरू हो। यह सोचकर विकास कीजिये कि हिमालय की इकोलॉजिकल-सेंसिटिविटी के साथ आप क्या विकास करेंगे, किस मेल का विकास करेंगे।

उत्तराखण्ड में आपने जो देखा वह यही देखा कि एक तरफ प्राकृतिक कारणों से वर्षा हुई, दूसरी तरफ़ से मनुष्यों का जो विकास रहा है उसके कारण इतनी बड़ी ट्रेजेडी हुई। वही हमने चेन्नई में और उसके बाद श्रीनगर में देखा। इसलिए कि जो पानी के स्रोत थे वे ख़त्म कर दिए गये। श्रीनगर की डल झील की जो पानी रोकने की क्षमता थी वह ख़त्म हो गयी। आपके यहाँ तालाब व पानी को रोक सकने में समर्थ अन्य चीजें ख़त्म हो गयीं। दूसरी तरफ जिस तरह से विकास किया गया है उसके कारण इकोलॉजिकल सेंसिबिलिटी बढ़ गयी।

मगर हिमालय के अन्दर विकास भी चाहिये। किस मेल का वह विकास होगा कि यहाँ के लोग यहीं रह सकें? यह आपके सामने बहुत बड़ा सवाल है। आप इसे नकार नहीं सकते। आप यह नहीं कह सकते कि यहाँ से पलायन होने दो तथा लोगों को दिल्ली जाने दो। यहाँ के गाँव बिल्कुल खाली हो रहे हैं क्योंकि यहाँ आज बेरोजगारी है। लोगों को काम नहीं मिलता। जंगलों का संरक्षण ज़रूर कर लिया है मगर लोगों की जो ज़रूरतें हैं उनके बारे में नहीं सोचा। मैं आपसे कहने वाली कोई नहीं होती हूँ क्योंकि यहाँ के लोग पूरे देश को सिखा चुके हैं। मैं क्या कहूँगी आपसे कि आपको क्या करना चाहिए! मगर मैं आपसे यह ज़रूर कहूँगी कि हिमालय का एक बहुत बड़ा सवाल है जो आप लोग नहीं उठा रहे हैं। आपको इसे उठाना पड़ेगा क्योंकि इस देश का बहुत बड़ा सवाल है कि हमें विकास चाहिये मगर ऐसा

विकास जो विनाश न लाये। लेकिन आज का विकास ऐसा है कि जब-जब जलवायु-परिवर्तन का असर होगा, विनाश की गति बढ़ती जायेगी। हिमालय के लिए वह क्या विकास होगा जिससे हम समृद्धि ला पायेंगे? आपका यह जो सवाल है उसे पूरी दुनिया को सुनना चाहिये। आप रास्ता खोजेंगे, एक नया तरीका लायेंगे तो कहीं न कहीं पूरी दुनिया की समझ बढ़ेगी कि एक नया रास्ता हो सकता है। आज का जो रास्ता हम जानते हैं कि विनाश करते जाओ और उसके ऊपर लेप लगाते जाओ, वह लेप कहीं न कहीं टूटता जाता है। तो यह बैंड-एड सोल्युशन नहीं चलेगा।

मैं अंत में आपको यही कहूँगी कि मेरी हिम्मत नहीं होती कहने की कि यह रास्ता है। मगर मिलकर एक नया रास्ता ढूढना पड़ेगा जिससे हम पर्यावरण बचायें लेकिन लोगों को भी बचायें। अगर लोगों का पर्यावरण नहीं होगा तो प्रलय तो आनी ही है।

बहुत-बहुत धन्यवाद!

***

अष्टम बी डी पाण्डे स्मृति व्याख्यान - 25 मार्च, 2017

एडमिरल देवेन्द्र कुमार जोशी

पीवीएसएम, एवीएसएम,वाईएसएम,एनएम, वीएसएम,एडीसी (अ.प्रा.)

“राष्ट्रीय सुरक्षा और उच्च स्तर पर रक्षा नीतियों का संचालन”

डॉ हरीश चन्द्र पाण्डेजी, पद्मश्री डॉ पाण्डेजी, संस्थान के निवर्तमान चेयरमैन श्री अरुण सिंह जी जो यहाँ उपस्थित नहीं हैं, बोर्ड ऑफ़ ट्रस्टीज के सीनियर मेम्बरान, उपस्थित देवियों और सज्जनों,

मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हूँ कि अपने अवसर दिया कि मैं यहाँ आकर आपके साथ कुछ समय व्यतीत कर सकूँ।

श्री बी. डी. पाण्डे से मिलने का मेरा कभी सौभाग्य नहीं रहा। तकरीबन पीढ़ी-डेढ़ पीढ़ी का शायद फ़र्क रहा हो। लेकिन उनकी उपलब्धियाँ- उत्तराखण्ड के पहले आई.सी.एस. ऑफिसर, कैबिनेट सेक्रेटरी, पंजाब व पश्चिम बंगाल के राज्यपाल और रिटायरमेंट के बाद वापस अल्मोड़ा में बस कर उन्होंने जो योगदान दिये और जिसकी लैगसी (विरासत) आज उत्तराखण्ड सेवा निधि और उससे जुडी हुई संस्थाओं के रूप में हमें मिल रही है, उस सबसे आप मुझसे ज्यादा अच्छी तरह अवगत हैं। इसलिये आज का यह सत्र मैं स्व. श्री बी डी पाण्डेजी की स्मृति को समर्पित करता हूँ। मैं विशेष तौर पर श्री अरुण सिंह जी का आभारी हूँ जो मुझसे कभी मिले नहीं हैं। मेरी उनसे कभी बात नहीं हुई है लेकिन एक तरह से उनका निर्देश श्री पाण्डेजी के माध्यम से मेरे लिये आया था कि मैं आज आपके सामने यहाँ आऊँ। वे हमारे रक्षा राज्य-मंत्री रहे हैं। रक्षा मंत्रालय में उन्होंने दो अलग-अलग टेन्योर (कार्यकाल) किये हैं। उन्होंने कुछ इतने दूरदर्शितापूर्ण क़दमों की शुरुआत कि थी कि हम में से कई लोगों

का मानना है कि अगर वे अपना पहला कार्यकाल पूरा करते या दूसरे कार्यकाल में एक एग्जीक्यूटिव कैपेसिटी में आते, जैसा कि आपको पता है कि दूसरे कार्यकाल में कारगिल युद्ध के दौरान वह रक्षामंत्री जसवंत सिंह को सलाहकार के तौर पर सहयोग दे रहे थे। अगर उनको पूरा मौक़ा मिला होता तो उनकी सोच और उनका नजरिया इतना फार रीचिंग और विज़नरी था, मेरा मानना है कि मैं आज आपसे जो कहने जा रहा हूँ उसका रुख और बहाव कुछ और ही होता।

आज की वार्ता के लिये जो टॉपिक मैंने सुझाया था और जिसे डॉ. पाण्डेजी ने स्वीकार कर लिया: **'राष्ट्रीय सुरक्षा और उच्च स्तर पर रक्षा नीतियों का संचालन'**। यह नेशनल सिक्योरिटी क्या चीज़ है? इसकी परिभाषा क्या है? यू.एस. में एक कांग्रेसमैन रहे हैं- सीनेटर रॉस जिनको 'हाउस कमेटी फॉर ड्राफ्टिंग ऑफ़ द फ्रीडम ऑफ़ इनफार्मेशन एक्ट' का चेयरमैन बनाया गया था। इस अत को ड्राफ्ट करने के सन्दर्भ में नेशनल सिक्योरिटी का उल्लेख आया था और सीनेटर रॉस ने कहा था, "**National security is such an ill defined phrase that in 16 years of chairing the Committee I could never find anybody who could give me a definition"**। लेकिन इतना जटिल भी नहीं है। एक और बहुत वरिष्ठ विश्लेषक और स्कॉलर रहे हैं, रिचर्ड वुलमैन। संक्षेप में उनकी थ्योरी यह थी कि उन्होंने एक थ्रेट-बेस्ड इनिशिएटिव प्रपोज किया था। इसका मतलब है कि हर चीज़ जिससे देश के आज के अस्तित्व या कल के भविष्य को खतरा हो सकता है वह नेशनल सिक्योरिटी के दायरे में आती है। इस परिभाषा को अगर लें तो नेशनल सिक्योरिटी का डिस्कोर्स काफ़ी आसान हो जाता है। इसके कई एलिमेंट्स हैं जिन पर हम चर्चा कर सकते हैं।

इनमें सबसे पहला एक्सटर्नल सिक्योरिटी (बाह्य सुरक्षा) है जिसे मिलिट्री सिक्योरिटी भी कहा जाता है। यह अपने में स्पष्ट है- देश कि सीमाओं कि सुरक्षा जो थलसेना, वायुसेना और नौसेना की ज़िम्मेवारी होती है। आप थलसेना और वायुसेना की गतिविधियों से तो परिचित होंगे लेकिन नेवल ऑपरेशनों के कुछ यूनिक फीचर हैं जिन्हें मैं आपके सामने कवर करना चाहूँगा। थल व वायु सेनायें नेशनल बाउंड्रीज़ से लिमिटेड हैं। सामान्य परिस्थिति में नेशनल बाउंड्री या नेशनल एयर स्पेस क्रॉस नहीं कि जा सकती। अपने अक्सर सुना होगा कि हमारे पश्चिमी पड़ौसी देश के साथ सम्बन्ध तनावपूर्ण होते हैं। हमें उसके एयर स्पेस के यूज़ की अनुमति नहीं मिलती है और हमारी व्यावसायिक उड़ानों को भी काफ़ी डेविएशन लेकर उड़ना पड़ता है। लेकिन नौसेना के सन्दर्भ में यह बात जिसे ऐड-लैंग्वेज में बोलते हैं- हट कर (that's different), अंतर है। समुद्र में कोई बाउंड्री पोस्ट या फेंस-वायर टाइप की बाउंड्री तो

है नहीं। और समुद्रों को ऐतिहासिक तौर पर ग्लोबल-कॉमन्स यानी मानवता कि सम्पत्ति माना जाता है। इसलिये जहाजों को कहीं आने-जाने के लिये दूसरे देश कि अनुमति लेने कि ज़रूरत नहीं होती। नेविगेशन 'द यूनाइटेड नेशन्स कन्वेंशन ऑन द लॉज़ ऑफ़ द सीज' से गवर्न होता है। किसी भी देश को अपने जहाजों के लिये फ्रीडम ऑफ़ नेविगेशन हर समय प्राप्त होती है। इसका मतलब यह भी है कि कोई भी दो देश जो समुद्र से जुड़े हों वे मेरीटाइम नेबर (समुद्री पड़ोसी) कहे जा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर इंडिया से आपका जहाज इंडियन ओसन को क्रॉस करके स्वेज़ या केप ऑफ़ गुड होप का चक्कर लगा कर पेसिफ़िक ओसन को क्रॉस करके नार्थ या साउथ अमेरिका के किसी भी देश तक, जो तटीय राज्य है, बिना किसी अनुमति के जा सकते हैं। यही वजह है कि इतिहास में नेवल फोर्सेज की फ्लेक्सिबिलिटी का समृद्ध और शक्तिशाली देशों ने इस्तेमाल किया है। एक या दो शताब्दी पहले जो औपनिवेशिक ताकतें थीं- ब्रिटेन, फ्रांस और डच, उन्होंने अपनी कॉलोनीज़ दूरदराज़ के स्थानों में स्थापित कीं और सौ-दो सौ साल तक इनका राज चला। वह सब समुद्री माध्यम से, नौसेना से हुआ।

हमारे सन्दर्भ में इस समय भारत का 95 प्रतिशत व्यापार समुद्री रूट से होता है। समुद्री रूट की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी नौसेना की होती है। इसके अलावा भी जो राष्ट्रीय हित हैं, यह ज़रूरी नहीं है कि वे देश कि सीमाओं के अन्दर ही हों। कई बार देश कि बाउंड्री के बाहर भी

हो सकते हैं। इसके कुछ उदाहरण मैं आपको देना चाहूँगा। दक्षिणी हिन्द महासागर में, मोटे तौर पर मॉरिशस और अन्टार्कटिका के बीच की जगह में रौड्रिग्स ट्रिपल जंक्शन नामक एक समुद्री ज्योग्राफिकल एंटिटी है। वहाँ इस समय हिन्दुस्तान के पास दस हज़ार वर्ग किलोमीटर का एरिया सीबेड एक्सप्लोरेशन का, इंटरनेशनल सीबेड ऑथोरिटी से लीज पर है। इसका मतलब यह है कि तीस साल तक वहाँ से जो मिनरल या कीमती धातुएँ निकलेंगे उन पर भारत का अधिकार होगा। इसी तरह के अन्य इलाके सीबेड ऑथोरिटी ने सीबेड एक्सप्लोरेशन के लिये दुसरे देशों को भी दिये हैं। यह जगह हमारे देश कि सीमाओं से हजारों किलोमीटर दूर है। अपने सुना होगा कि दक्षिणी गंगोत्री से स्टार्ट होने के बाद अन्टार्कटिका ट्रीटी के अन्दर हमारे 'मैत्री' और 'भारती' रिसर्च स्टेशन अन्टार्कटिका में हैं जो अगले 35 साल हमारे पास रहने वाले हैं। यह भी इंडिया का एक नेशनल इंटरेस्ट है। ओ.एन.जी.सी. विदेश जो ओ.एन.जी.सी. की फॉरेन आर्म है, उसके पास साउथ चाइना सी में वियतनाम के साथ कोलैबोरेशन में एनर्जी एक्सप्लोरेशन के लिये ब्लॉक्स हैं। यह साउथ चाइना सी में भारत का एक नेशनल इंटरेस्ट है। इन राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिये, अगर ज़रूरत हो तो, जो सेना सक्षम है वह नौसेना है। यह ज़रूर है कि किस राष्ट्रीय हित की सुरक्षा के लिये एक सशस्त्र बल या नौसेना को किस जगह कमिट किया जाय या न किया जाय यह निर्णय सरकार लेती है।

कहीं भी मेरीटाइम डोमेन या समुद्री सन्दर्भ में राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा का सवाल आता है तो इसकी ज़िम्मेदारी खाली नौसेना की होती है और इसलिये नेवी का एम्बिट (सीमा) आर्मी और एयर फ़ोर्स से थोड़ा अलग है।

बाहरी सुरक्षा जिसे लैटिन में कहते हैं sine qua non। इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया है without which not, याने इसके बिना आगे हम कुछ कर ही नहीं सकते। एक्सटर्नल सिक्योरिटी या मिलिट्री सिक्योरिटी इस केटेगरी में आती है। इसके बाद नेशनल सिक्योरिटी के कई एलिमेंट्स हैं जिनमें से कुछ की चर्चा मैं आपके साथ यहाँ करूँगा।

अगला इंटरनल सिक्योरिटी है। यहाँ हमारे बीच कई सीनियर पुलिस ऑफिसर हैं। जम्मू-कश्मीर, उत्तर-पूर्व में जो विद्रोह कि स्थितियाँ हैं, माओवादी या नक्सली आन्दोलन हो रहे हैं, आतंकवादी हमले हो रहे हैं- ये सब इंटरनल सिक्योरिटी के दायरे में आती हैं। इंटरनल सिक्योरिटी की मैंडेट प्राथमिक तौर पर गृह-मंत्रालय तथा उसके अंतर्गत आने वाली पैरा-मिलिट्री फोर्सेज या केन्द्रीय पुलिस संगठनों की है। लेकिन जैसा कि सब जानते हैं, अक्सर

इस तरह की परिस्थितियों में सैन्य बलों का हर जगह कमिटमेंट है। कई जगह हमारी एयरफोर्स कमिटेड है। कोस्टल सिक्योरिटी के सन्दर्भ में समुद्री मार्ग से 2008 में मुम्बई में हुए आतंकी हमले के बाद नौसेना और भारतीय तटरक्षक बाल इसमें पूरी तरह कमिटेड हैं। यह नेशनल सिक्योरिटी का दूसरा इम्पोर्टेन्ट एलिमेंट है।

इकॉनोमिक सिक्योरिटी जिसके अंतर्गत सिक्योरिटी ऑफ़ ट्रेड, सिक्योरिटी ऑफ़ कॉमर्स आदि आते हैं, स्वयं में स्पष्ट है। यदि देश कि जीडीपी नहीं बढ़ती है तो सारे विकास कार्य अधूरे रह जायेंगे तथा स्वास्थ्य, शिक्षा जैसे बुनियादी क्षेत्रों में बिल्कुल प्रगति नहीं कर पायेंगे।

एनर्जी सिक्योरिटी- पेट्रोलियम, पॉवर आदि। ऊर्जा भी बहुत महत्वपूर्ण, हमारे बुनियादी ढाँचे का सबसे महत्वपूर्ण कॉलम हैं। अगर आप सेंट्रल गवर्नमेंट के रजिस्ट्री ऑफिस की वेबसाइट देखें तो यह आपको बताती है 83 प्रतिशत एनर्जी इम्पोर्ट सी रूट से है। इससे नेशनल सिक्योरिटी में नेवी कि भूमिका हाईलाइट होती है। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण जो है वह यही रिपोर्ट बताती है कि ऊर्जा के कुल उत्पादन और उपभोग का अन्तर लगातार कम होता जा रहा है। इसलिये ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की दिशा में जगह-जगह पहल शुरू हो रही है।

डिजास्टर सिक्योरिटी- आतंरिक आपदा की स्थिति हो , नेशनल डिजास्टर मैनेजमेंट एक्ट 2008 या 2009 के आसपास आया हुआ है। हर डिपार्टमेंट, सरकारी संगठन को प्रेपेयर्डनेस... उत्तराखण्ड ने तो 2013 की आपदा के समय इसका दंश झेला ही हुआ है। यह नेशनल सिक्योरिटी का अगला इम्पोर्टेन्ट एलिमेंट है।

फ़ूड सिक्योरिटी- अपनी जनसंख्या के लिये हमारा कुल खाद्य उत्पादन, हमारा जो बफर स्टॉक है उसके बीच क्या सम्बन्ध है। अगर खाद्य संकट उत्पन्न हुआ तो मास अनरेस्ट, लोगों का दूसरे स्थानों या अर्थव्यवस्था के दूसरे सेक्टरों को पलायन के हालात पैदा हो सकते हैं। इसी सन्दर्भ में मैंने श्री बी. डी. पाण्डेजी के बायो-डेटा में पढ़ा था कि जब वे बिहार में थे तब खाद्य-संकट के समय स्थिति में सुधार के लिये उन्हें बिहार का फ़ूड-कमिश्नर बनाया गया। अगर कोई राष्ट्र अपने नागरिकों को फ़ूड सिक्योरिटी नहीं दे पाता तब क्या होता है? हाल के वर्षों में इथियोपिया और सोमालिया के अनुभवों से हम अच्छी तरह अवगत हैं।

एनवायरनमेंटल सिक्योरिटी जिसके अंतर्गत आजकल क्लाइमेट, ग्लोबल वार्मिंग, राइजिंग सी-लेवल आदि आते हैं। सवाल उठ सकता है कि इन सबका नेशनल सिक्योरिटी से क्या सम्बन्ध है? इनका एक देश के अस्तित्व पर प्रभाव पड़ सकता है। अगर आप मॉरिशस कि बात करें जहाँ समुद्र का स्तर बढ़ने से उनको भरोसा तक नहीं है कि अगले दस-बारह साल बाद वह देश रहेगा भी कि नहीं। इस तरह के मैसिव पापुलेशन माइग्रेशन के मूवमेंट्स हो सकते हैं। जिस जगह को ये लोग पलायन कर रहे हैं वहाँ क्या प्रभाव होगा? तो पर्यावरणीय सुरक्षा भी राष्ट्रीय सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण तत्व हो जाता है।

साइबर और इनफार्मेशन सिक्योरिटी - आप जानते हैं कि आजकल हर चीज़ नेटवर्क्ड है। हमारे बैंकिंग सिस्टम्स... हम कैशलेस इकॉनोमी की तरफ़ जा रहे हैं। इनकी क्या सिक्योरिटी है? आये दिन आप पढ़ते हैं कि डीआरडीओ की वेबसाइट हैक हो गयी। पी.एम.ओ. की वेबसाइट एक बार हैक हो गयी थी। हैकिंग इसका एक छोटा आयाम है। अगर हमारी साइबर और इनफार्मेशनल सिक्योरिटी रेक्विजिट डिग्री की नहीं हुई तो कोई हमारी बैंकिंग और आर्थिक व्यवस्था से खिलवाड़ कर सकता है। साइबर और इनफार्मेशन सिक्योरिटी नेशनल सिक्योरिटी का एक अहम् एलिमेंट हो जाता है।

इस लिस्ट को आगे बढ़ाया जा सकता है। मैंने समय की कमी को देखते हुए केवल मुख्य प्रकारों को ही शामिल किया है। इन सबमें एक्सटर्नल सिक्योरिटी तो बिल्कुल प्री-

रिक्वीजिट है। किसी देश की बाकी सिक्योरिटीज सौ प्रतिशत रहेंगी यह कहना मुश्किल है। लेकिन वह देश तब भी प्रगति व विकास कर सकते है जो इस बात पर निर्भर करेगा कि बाकी की सिक्योरिटीज को वह किस हद तक हासिल कर पाया है। इसकी डायरेक्ट बेअरिंग उसके डेवलपमेंट इंडेक्स में आयेगी। जो देश इन सारी सिक्योरिटीज को बहुत अच्छी डिग्री तक हासिल कर सकता है वह स्पष्ट तौर पर डेवलप्ड नेशन की केटेगरी में आ जायेगा। उसके बाद डेवेलपिंग नेशन की केटेगरी में आयेगा। उसके नीचे अंडर डेवलप्ड नेशन की केटेगरी में आयेगा और उसके भी नीचे जिसको पहले इंडेक्स ऑफ़ फेल्ड स्टेट्स बोला जाता था लेकिन आजकल एक ज्यादा पोलाइट टर्म यूज़ कर रहे हैं- इंडेक्स ऑफ़ फ्रेज़ाइल स्टेट्स- वह उस केटेगरी में गिना जायेगा। यह सूची वेबसाइट में उपलब्ध है और वर्तमान रैंकिंग के हिसाब से इंडेक्स ऑफ़ फ्रेज़ाइल स्टेट्स में सोमालिया, सूडान, यमन,सीरिया आदि लीडर्स हैं। हमारा एक पड़ोसी देश भी इस सूची में पिछले कई सालों से लगभग आठवें, नवें या दसवें नंबर पर विराजमान है।

नेशनल सिक्योरिटी तथा इसके विभिन्न एलिमेंट्स या आयामों की पृष्ठभूमि के साथ मैं अपनी वार्ता के दूसरे फेज़- उच्च स्तर पर रक्षा-नीतियों का संचालन, में ट्रांजिट करूँगा। इसके लिये मेरे विचार से ऐतिहासिक सन्दर्भ देखना ज़रूरी होगा। हमारे बीच हिस्ट्री के जाने-

माने प्रोफेसर अनिल जोशी भी हैं जो इस बारे में मुझसे बेहतर जानते होंगे। संक्षेप में, सन 1947 तक, जब हम एक उपनिवेश थे, हिन्दुस्तान का सबसे पावरफुल ऑफिस वाइसरॉय का था जो उस वक़्त वाइस रीगल लॉज, अब राष्ट्रपति भवन बोलते हैं। वहाँ से खाली हिन्दुस्तान ही नहीं पूरे साउथ एशिया पर उसकी रिट चलती थी क्योंकि उस समय पाकिस्तान, बांग्लादेश, बर्मा आदि ब्रिटिश साम्राज्य का अंग थे। वाइसराय ज्यादातर मिलिट्री फंक्शनरी होता था। आखिरी वाइसराय लार्ड लुइस माउंटबैटन रॉयल नेवी के एक्टिंग ड्यूटी सर्विंग एडमिरल थे। वाइसराय के बाद हिन्दुस्तान का सबसे पावरफुल ऑफिस कमांडर इन चीफ का था। वह तीनमूर्ति भवन, जो बाद में प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू का निवास बना और दिल्ली कि दूसरी सबसे महत्वपूर्ण बिल्डिंग कहा जा सकता है, वहाँ से ऑपरेट होता था। अंतिम कमांडर इन चीफ फील्ड मार्शल सर क्लाउड औचिनलेक रहे जो आज़ादी के करीब एक साल बाद 1948 के अंत तक रहे।

कहने का तात्पर्य यह है कि उच्चतम स्तर पर प्रक्टिसिंग मिलिट्री फंक्शनरीज़ रहते थे और उनको मिलिट्री एडवाइजर कि बाहर से कोई ज़रूरत नहीं होती थी। बल्कि जो कमांडर इन चीफ होता था वह वाइसराय की कौंसिल का दूसरा सबसे सीनियर मेम्बर होता था। रक्षा के अलावा भी सरकार की सारी नीतियों में उसका श्रेय होता था। लेकिन वे एक साम्राज्यवादी सरकार कि ज़रूरतें थीं। स्वतंत्र गणतांत्रिक राष्ट्र को दूसरा ढाँचा चाहिये था और इसके लिये आज़ादी के बाद 1947 में वाइसराय से गवर्नर जनरल बने लार्ड लुइस माउंटबैटन से सुझाव माँगे गये। उन्होंने अपने चीफ ऑफ़ स्टाफ़ लार्ड डिसमे को यह काम सौंपा। संक्षेप में जो

मॉडल उन्होंने प्रपोज किया था कि भारत कि तीन सेनाओं का एक-एक चीफ होना चाहिये- चीफ ऑफ़ आर्मी, चीफ ऑफ़ नेवल स्टाफ़ और चीफ ऑफ़ एयर-स्टाफ़। एक चेयरमैन चीफ ऑफ़ स्टाफ होना चाहिये जो सरकार को सिंगल पॉइंट मिलिट्री एडवाइस दे। यह लार्ड लुइस माउंटबैटन और लार्ड डिसमे का महत्वपूर्ण रिकमेन्डेशन था लेकिन जो ऑन-ग्राउंड इम्प्लेमेंट हुआ वह बिल्कुल ही अलग था। तीनों सर्विसेज के चीफ बनाये गये लेकिन जो सर्विस हेड-क्वार्टर हैं उनको रक्षा मंत्रालय के अन्दर एक डिपार्टमेंट का भी दर्ज़ा नहीं दिया गया। उनको अटैच्ड ऑफीसेज़ बोला गया। इसका मतलब है कम्युनिकेशन बिटवीन सर्विस हेडक्वार्टर्स-नेमली आर्मी हेडक्वार्टर, नेवी हेडक्वार्टर एंड एयरफ़ोर्स हेडक्वार्टर विद इट्स ओन मिनिस्ट्री ऑफ़ डिफेन्स विल हैव टू बी बी मीडियम ऑफ़ फाइल्स, नोटिंग्स, मेमोस etc एंड बिटवीन 'अस' एंड 'देम' (communications between service headquarters- namely Army headquarter, Navy headquarter and Air Force headquarter with its own Ministry of Defence will have to be by medium of files, notings, memos etc and between 'us' and 'them')

यह हमारा एक फंडामेंटल ड्राबैक रहा है जो आज तक भी किसी न किसी तरह से बरक़रार है।

लेकिन उस समय का माहौल भी कुछ अलग था। पंडित नेहरु जो हमारे प्रथम प्रधानमंत्री थे, उनका ख़ुद का इंटरनेशनल स्टेज पर एक स्टेचर था, एक स्टेट्समैन की छवि थी और वे मानते नहीं थे कि लड़ाई या मिलिट्री की बहुत ज़रूरत है। उनके रक्षामंत्री कृष्ण मेनन भी इसी विचारधारा के थे। पंचशील का ज़माना था। पंडित नेहरु नॉन-एलाइनमेंट मूवमेंट के लीडर थे और ये सिचुएशन हम एन्विसाइज़ नहीं कर सकते थे कि हमें बहुत पावरफुल मिलिट्री चाहिये। वे सोचते थे कि हम बहुत शांतिप्रिय देश हैं और हर समस्या का शांतिपूर्ण और कूटनीतिक समाधान निकल लेंगे। अमेरिका में एक बहुत शक्तिशाली और प्रभावशाली थिंक टैंक है- रैंड कारपोरेशन। आपमें से बहुतों ने उसका नाम सुना होगा। यह अमेरिकी सरकार को सरकारी नीतियों के बारे में और वहाँ के जो मेगा कॉर्पोरेट्स हैं उन्हें कॉर्पोरेट नीतियों के बारे में एडवाइस करता है। इसके एक बहुत सीनियर स्कॉलर और एनालिस्ट हैं जिनका नाम जॉर्ज टेनहम है। उनको साउथ एशिया, मुख्यतः हिन्दुस्तान के ऊपर एक्सपर्ट माना जाता है। उन्होंने बहुत काम किया है। उन्होंने एक किताब लिखी है- 'इंडियन स्ट्रेटेजिक थॉट्स'। नेहरूजी का जो ये माइंडसेट था कि हम बहुत ही शांतिप्रिय देश हैं, हमें पावरफुल मिलिट्री कि क्या ज़रूरत है। 1950 के दशक कि शुरुआत में चीन ने जब तिब्बत पर हमला करके उस पर कब्ज़ा कर लिया था तब उस समय के आर्मी चीफ जनरल करिअप्पा ने प्रधानमंत्री नेहरु जी को आगाह करने कि कोशिश की थी कि सर, यह संकट है

और हमें मिलिट्री कि तरफ ध्यान देना पड़ेगा। जॉर्ज टेनहम अपनी किताब में क्या लिखते हैं, उसे मैं उद्धृत करना चाहूँगा-

****It is not the business of the Commander in Chief to tell the Prime Minister who is going to attack us and where. In fact, Chinese will defend our eastern frontier. You mind only Kashmir and Pakistan.”**

वह आगे लिखते हैं-

“Prime Minister Nehru neglected the military, giving it few resources and downgrading the top leadership while increasing status and pays of both, the civil servants and the police.”

यह सुनहरा सपना 1962 में टूट गया। मैं उसके बारे में यहाँ ज्यादा समय नहीं बर्बाद करूँगा। आप सब उससे अवगत हैं। पब्लिक डोमेन में सब कुछ अवेलेबल है। लेकिन उस समय भारतीय मिलिट्री इतनी अनप्रेपेअर्ड थी कि बर्फीली ऊंचाइयों पर कैनवास शूज़ में लड़ाई लड़ी जा रही थी। हायर डायरेक्शन या आर्गेनाइजेशन या कमांडर इन कण्ट्रोल का नाम तक नहीं था। प्राइम मिनिस्टर और डिफेन्स मिनिस्टर श्री कृष्ण मेनन ग़लत, जिनको वे चाह रहे थे उनको, कमांडर सेलेक्ट कर रहे थे, वगैरह- वगैरह। यह सुनहरा सपना टूटने के एक-डेढ़ साल के अन्दर ही 1964 में पंडित जी चल बसे। लोग कहते हैं कि इसका भी बड़ा सदमा

पहुँचा था। उसके अगले दशक में भारतीय आर्म्ड फोर्सेज- सेना या वायुसेना का रैपिड मॉडर्नाइजेशन, प्राइमरीली बाय द वे ऑफ़ हार्डवेयर इंडक्शन, हुआ। उस समय सोवियत रूस से ज्यादा हार्डवेयर आया था। अगले दस साल मिलिट्री के बिल्ड-अप पर बहुत ध्यान दिया गया लेकिन खाली हार्डवेयर बिल्ड-अप पर। उसका जो आर्गेनाइजेशनल पक्ष है या जो हायर डायरेक्शन ऑफ़ वॉर या हायर मैनेजमेंट ऑफ़ डिफेन्स है उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया गया।

अगला माइलस्टोन आता है 1971 का। डिसाइसिव विक्ट्री थी उसके ऊपर भी काफ़ी लिटरेचर अवेलेबल है। लेकिन अगर आप लाइनों के बीच पढ़ें तो ये बेसिकली सिंगल सर्विस ऑपरेशन थे। हर सेना अपनी लड़ाई ख़ुद लड़ रही थी। जो थोड़ा बहुत कोआर्डिनेशन आर्मी और एयर फ़ोर्स के बीच एक सेक्टर में रहा हो या नेवी और एयर फ़ोर्स के बीच बोलना-चालना बांग्लादेश और कराची में रहा हो वह आर्गेनाइजेशनल स्ट्रक्चर के अंतर्गत नहीं था बल्कि दो चीफ्स के बीच व्यक्तिगत स्तर पर था। इनमें कोई बैच-मेट था, कोई कॉलेज-मेट था वगैरह-वैगरह। आप लोगों ने रेफरेन्सेस पढ़े होंगे कि 1971 की लड़ाई में जिस समय सेना को किसी ख़ास सेक्टर में, किसी एक ख़ास दिन व समय पर किसी एक ख़ास चीज़ की ज़रूरत थी वह उसे उस दिन नहीं मिल पायी क्योंकि उस समय पर एयर फ़ोर्स कहीं अन्य कमिटेड थी। किसी प्रकार वह एक निर्णायक विजय थी लेकिन आर्गेनाइजेशनल स्ट्रक्चर पर उस समय तक कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया गया था। आप रेफरेन्सेस में यह भी पढ़ते होंगे कि इंदिरा गांधी ने जनरल मानेकशॉ से ये कहा या एडमिरल नंदा ने इंदिरा गांधी को ये कहा। मैं समझता हूँ आधे से ज्यादा लोग यह याद नहीं कर पायेंगे कि 1971 के युद्ध में हिन्दुस्तान का डिफेन्स मिनिस्टर कौन था।

ऐसा नहीं है कि यह आभास ही न रहा हो कि हमें आर्गेनाइजेशनल आस्पेक्ट को टैकल करना है। यह आभास हमेशा रहा और समय-समय पर अलग-अलग कमेटीज़ इसके लिये अपॉइन्ट होती रही। उस सन्दर्भ में श्री अरुण सिंह का फिर से ज़िक्र करना चाहूँगा जो अपने पहले कार्यकाल, 1980 के दशक में रक्षा राज्य-मंत्री थे और बतौर रक्षा राज्य-मंत्री वह इस तरह की कमेटी के अध्यक्ष बने। उस कमेटी ने इतने विज़नरी, दूरदर्शी इनिशिएटिव्स स्टार्ट किये थे, जिसमें जॉइंट हिटिंग के लिये डायरेक्टरेट जनरल ऑफ़ डिफेन्स प्लानिंग स्टाफ बनाया गया था। इसे चीफ ऑफ़ स्टाफ के सेक्रेटेरिएट के काम करना था। दुनिया की जितनी लीडिंग आर्म्ड फोर्सेज हैं और वे जिस तरह वारफेयर करती हैं उस तरह से हम अपनी एक एप्रोच लें, एक सिंगल एप्रोच से हट कर। एक चीफ ऑफ़ डिफेन्स स्टाफ की पोस्ट हो। नहीं तो हम सिंगल सर्विस ऑपरेशनों में ही रह जायेंगे। दुर्भाग्य से उनका पहला कार्यकाल

अलग कारणों से पूरा नहीं हुआ। वे जल्दी छोड़ कर चले गये। जैसा मैंने कहा, श्री अरुण सिंह जी को मैं जानता नहीं हूँ। मैं आज तक उनसे मिला नहीं हूँ। यहाँ आप में से बहुत से उन्हें बहुत अच्छी तरह से जानते होंगे क्योंकि वे इतने साल बिन्सर में रहे हैं। अगर वे अपने उस कार्यकाल को पूरा कर जाते तो आज कि परिस्थिति बिल्कुल अलग होती।

यही माहौल आगे तक चलता रहा, जब सेकंड रूड शॉक या रूड अवेकनिंग 1999 में कारगिल वॉर के रूप में हुई। उसमें भी हमारी विजय हुई। कारगिल विजय दिवस मनाया जाता है लेकिन कुछ घुसपैठियों को निकालने के लिये हमें जान-माल का कितना इन्वेस्टमेंट करना पड़ा इससे आप भलीभाँति अवगत हैं।

उस टाइम पर एक सेकंड कमेटी- कारगिल रिव्यु कमेटी, बनायी गयी। इसके चेयरमैन श्री के सुब्रमणियम थे जो एक डिफेन्स ऑफिसर नहीं थे। वह तमिलनाडु कैडर के 1951 बैच के एक बहुत वरिष्ठ आईएएस अफसर थे जिन्होंने स्टेट और सेंट्रल लेवल पर बहुत अहत्वपूर्ण पदों पर काम किया। उनका इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ डिफेन्स स्टडीज एंड एनालिसिस में निदेशक के के रूप में लम्बा कार्यकाल रहा। उनको इंडियन स्ट्रेटेजिक थॉट में एक हॉक कहा जाता है। आज हम एक नुक्लेअर पॉवर हैं उसका श्रेय बहुत से लोग श्री सुब्रमणियम को देते हैं। उन्होंने बहुत लेखन कार्य किया। वे पत्रकार भी थे और एडिटोरियल लिखते थे। उनकी

राइटिंग से मैं उद्धृत करना चाहता हूँ। हमारे सन्दर्भ में एक ब्यूरोक्रेट कह रहा है जो रक्षा मंत्रालय में सचिव रह चुका है:

"Politicians enjoy power without any responsibility, bureaucrats wield authority without any accountability, and the military assumes responsibility without any direction."

जॉर्ज टेनहम ने अपने मोनोग्राफ 'इंडियन स्ट्रेटेजिक थॉट' में लिखा है:

"Where the military has almost no input at all in formulation of higher defence policy and national strategy. In effect the services have been downgraded in status and taken out of the national security decision-making process, while MoD civilian staff has grown in prestige and power and controls almost all military activities and programmes. Bureaucratic opposition has prevented the formation of much needed institutions like CDS as well as development of a national strategy."

जितने भी परिवर्तन हुए वे 'कारगिल रिव्यु कमेटी' और 'सुब्रमणियम कमेटी' की रिपोर्ट के बाद आये। एक ग्रुप ऑफ़ मिनिस्टर्स टास्क-फ़ोर्स में इसके सर्टेन एलिमेंट्स, एक इंटेलिजेंस, एक आर्गेनाईजेशन को डील करने के लिये टास्क-फ़ोर्स का गठन किया गया था। एक टास्क-फ़ोर्स के हेड श्री अरुण सिंह थे। इस कमेटी ने बहुत दूरदर्शितापूर्ण सुझाव दिये- क्रिएशन ऑफ़ सीडीएस, इंटीग्रेशन ऑफ़ सर्विस हैड-क्वार्टर्स विद द मिनिस्ट्री ऑफ़ डिफेन्स जो दुर्भाग्य से आज तक भी पूरे नहीं हुए हैं। 'कारगिल रिव्यु कमेटी' रिपोर्ट में, जिसने इंटेलिजेंस फेलियर और इन सबकी वजह आदि कुछ चीजें डिटरमिन की थीं, लिखा है:

" The committee found grave deficiencies in India's security management system and pointed out that India is perhaps the only major democracy where the armed forces are kept outside the apex government structure."

इसके बाद हाल ही में बनी एक अन्य कमेटी, नरेश चंद्रा कमेटी की संस्तुतियाँ भी कमोबेश ऐसी ही हैं- चीफ ऑफ़ डिफेन्स स्टाफ एज़ द सिंगल पॉइंट एडवाइजर टू द गवर्नमेंट, इंटीग्रेशन ऑफ़ द सर्विस हैड-क्वार्टर्स विद द मिनिस्ट्री ऑफ़ डिफेन्स आदि। इनमें से ‘कारगिल रिव्यु कमेटी’ के बाद कई परिवर्तन लागू हुए हैं। एक इंटीग्रेटेड डिफेन्स स्टाफ बनाया गया। एक कमान, अंडमान और निकोबार की कमान को एक तरह से जॉइंट कमान बना दिया गया जिसमें तीनों सर्विसेज की स्टाफिंग फिक्स्ड है और उसका कमांडर-इन-चीफ तीनों सर्विसेज से रोटेशन में आता है। लेकिन जो सबस्टैन्शियल या मटीरियल चेंजेज हैं वे आज तक नहीं हुए हैं। बाकी कमेटीज़ कि बात मैंने की है लेकिन भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने नवम्बर 2013 में ख़ुद बयान दिया था:

“This all arrangement calls for the right structure for the higher management of defence and appropriate civil military balance in decision making.”

नवम्बर 2013 में इन्होंने यह बयान दिया लेकिन मई 2014 में वे पद पर नहीं रहे। बाद की स्थिति कमोबेश वही है। इस मोड़ पर मैं आज कि वार्ता समाप्त करता हूँ।

देवियों और सज्जनों, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

***

नवम बी डी पाण्डे स्मृति व्याख्यान- 15 दिसम्बर, 2018

मुक्तेश (मिकी) पंत

"भारत और चीन में बुनियादी ढाँचे का विकास"

ललित जी, अनुराधा जी, सुमन दुबे जी और उत्तराखण्ड सेवा निधि के सब लोगों को मैं सबसे पहले अपना थैंक-यू बोलूँगा। मैं शुरू में श्री बी डी पाण्डे के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। बचपन से ही उनसे संपर्क रखने का हमारा सौभाग्य रहा। दो स्मृतियाँ खासकर स्पष्ट हैं। पहली, जब मैंने हिंदुस्तान लीवर में नौकरी शुरू की थी। यह 1976 की बात है और मैं मद्रास में मैनेजमेंट ट्रेनी था। अब चेन्नई कहना चाहिये लेकिन मुझे अभी भी मद्रास कहने की आदत है। श्री पाण्डे मद्रास आ रहे थे। वहाँ कोई बैंक की मीटिंग थी जिसमें वे मुख्य अतिथि थे। उन्होंने मुझे इत्तला की कि आप मुझसे मिलने आइये। मैं काफी घबरा गया। सोचिये, उस समय वह कैबिनेट सेक्रेटरी थे। मतलब भारतीय सिविल सर्विस के सर्वोच्च पदाधिकारी! मैं मैनेजमेंट ट्रेनी! मैं जब 'चोला' होटल पहुँचा तो मुझे वहाँ खटखटाने में डर लगी क्योंकि आपको याद होगा कि उनकी आवाज़ काफ़ी बुलन्द थी। अन्दर उनकी आवाज़ आ रही थी। मैंने दरवाज़े पर कान लगाया कि वे अपने लेक्चर का रिहर्सल कर रहे थे। खैर मैंने दरवाज़ा खटखटाया। लेकिन उसके बाद कोई डर या शंका की ज़रूरत नहीं थी क्योंकि उन्होंने मुझे इतने प्रेम से अपने पास बैठाया। मुझे याद है कि वह बहुत बड़ा कमरा था। जब उनके सवाल के जवाब में मैंने बताया कि मैं आन्ध्र-प्रदेश में मैनेजर बनने वाला हूँ तो उन्होंने आन्ध्र के बारे में मुझे बहुत उपयोगी जानकारी दी- रायलसीमा, तेलंगाना, कोस्टल आन्ध्रा के

इतिहास, भूगोल और वहाँ की सियासी हालत बारे में। मेरे ख़याल से वह करीब घंटा भर बैठे और फिर उन्होंने मुझे आशीर्वाद देकर भेजा। वही आशीर्वाद लगे हम सबको!

दूसरी स्मृति उसके क़रीब दस वर्ष बाद की है। मैं तब बम्बई में था, हिन्दुस्तान लीवर में ही। और मुझे याद है कि तब पाण्डे साहब पश्चिम बंगाल के राज्यपाल थे। एक सीनियर अंग्रेज़ मैनेजर के साथ हमारी मीटिंग चल रही थी जब उसकी पारसी सेक्रेटरी दौड़ती हुई आयी और हाँफते हुए बड़ी ज़ोर से उसने कहा, "मुक्तेश, गवर्नर ऑफ़ बंगाल वांट्स टु स्पीक विद यू।" सब घबरा गये वहाँ; मैं भी घबरा गया। खैर मैं गया तो वे स्वयं फ़ोन पर थे। उनको खबर लग गयी थी कि मैं कलकत्ते आ रहा हूँ। उन्होंने कहा कि तुम आ रहे हो तो हमारे साथ ही रहना। मैं उसके अगले हफ़्ते जब कलकत्ता गया तो टैक्सी-ड्राईवर से, जो एक सरदार था, जब मैंने कहा कि राजभवन जाना है तो उसने सोचा मैं टूरिस्ट हूँ। तो मुझे वह वहाँ ले गया और बाहर से दिखाते हुए उसने कहा कि ये मैदान है, यहाँ पर विक्टोरिया मेमोरियल है। कलकत्ते में पहले जब भारत की राजधानी होती थी तब यहाँ लार्ड क्लाइव रहा करते थे। मैंने जब कहा कि मेन गेट से अन्दर जाना है तो उसने पहले तो भाड़े के पैसे ले लिये, सोचा कि मैं पागल हूँ!

फिर हम मेन गेट पर पहुँचे तो वहाँ खड़े साढ़े छह फुट लम्बे दरबान ने सलाम ठोक कर अन्दर बुलाया। तब काफ़ी रात हो चुकी थी। मैं सो गया लेकिन मैंने उनसे कहा था कि मुझे सुबह थोड़ा जल्दी उठा देना, क्योंकि देखने का मन था। सुबह छह बजे जब मैं तैयार होकर नीचे आया तो पाण्डे साहब तैयार थे। उन्होंने ख़ुद मुझे पूरा राजभवन दिखाया। उन्होंने वह जगह दिखाई जहाँ लार्ड क्लाइव खड़े हुआ करते थे, जो तब भारत के भाग्य-विधाता थे समझिये। वहाँ पर हॉल ऑफ़ सीज़र था जहाँ पर पुरानी रोमन मूर्तियाँ बनी हुईं थीं। यह सब कहने का मकसद यह है कि इतने बड़े विद्वान् और इतने सीनियर आदमी एक नौसिखिये के साथ समय बिताकर कितना प्रेरित कर सकते हैं। यह सीख हमको तब से मिली है और यह बड़े काम की चीज़ है।

जब ललित और रंजन ने इस व्याख्यान के लिये कहा तो मुझे शुरू में बहुत झिझक हो रही थी क्योंकि मैंने देखा है कि यह व्याख्यान पहले किन हस्तियों ने दिया हुआ है। मैंने कहा कि मैं बिल्कुल लायक नहीं हूँ। लेकिन फिर सोचा कि मैं चीन में तीन वर्ष रह चुका हूँ। चीन यहाँ से ज्यादा दूर नहीं है। आपके यहाँ धारचूला या चमोली से यदि करीब पचास मील सीधी लाइन बनायें तो तिब्बत आ जाता है। तिब्बत चीन का अभिन्न भाग है। मैंने कहा कि चीन में रहने से नजरिया जो थोड़ा बदला है उसके बारे में आपको कुछ बताऊँ।

जैसा ललित जी ने बताया, मैं अल्मोड़े का हूँ। कसून मुहल्ले में पैदा हुआ था। हमारी आमा (नानी) थीं वहां। वह कर्मठ थीं लेकिन ज़रा तेज़-तर्रार थीं। एक कहानी है जो रंजन भी मुझे सुना रहा था कि एक बार उन्होंने पंसारी के यहाँ से मिट्टी का तेल मँगाया तो नौकर मिट्टी का तेल लेकर आया। वह सोच रही थीं कि बड़े टिन के डिब्बे में आयेगा लेकिन वह छोटी बोतल में था। तो उन्होंने मिट्टी का तेल लौटा दिया और उसके साथ पंसारी को एक चिट्ठी भेजी। साथ में एक माचिस की डिबिया भी भेजी। उस चिट्ठी में लिखा था, " मैं त्यर मिट्टी तेल वापस लौटूँ णयूँ। यकूं आपुण ख्वार में डाल ल्हिये और माचिस ले भेज णयूँ। आग ले लगे ल्हिये।" पन्सारी ख़ुद किस्सा सुनाया करता था कि उसके इस 'जुल्म' की उसे 'सजा ए मौत' सुनाई गयी थी। उनका (नानी) हम सब पर बहुत बड़ा प्रभाव रहा। लेकिन अल्मोड़ा से मेरा लगाव जितना है उतना आने का मौक़ा नहीं मिलता। इसलिये मैं यहाँ आकर बहुत खुश हूँ।

व्याख्यान का विषय, जैसा कि आप देख रहे हैं, **भारत व चीन में बुनियादी ढाँचा** (इंफ्रास्ट्रक्चर) है। मैं ढूँढ रहा था कि हिन्दी में इसे क्या कहें लेकिन उसका सीधा अनुवाद है नहीं। कुछ लोग आधारिक व्यवस्था भी कहते हैं। इंफ्रास्ट्रक्चर मतलब सड़कें, पानी, बिजली, स्कूल, हॉस्पिटल और शहरों का ले-आउट। चीन में इस बारे में काफ़ी तरक्की हुई है। उसके मैं आपको कुछ उदाहरण देता हूँ जिससे आप सोच सकते हैं किस स्तर में वे पहुँच गये हैं।

पहला, चीन की शहरी आबादी करीब 60 प्रतिशत (59.4) पहुँच गयी है। चीन की आबादी हमसे काफ़ी ज्यादा, लगभग 140 करोड़ है। सन 1990 में शहरी आबादी 26 प्रतिशत थी। यह 26 प्रतिशत से 60 प्रतिशत में आ गयी है! आप सोचिये, करीब 50 से 60 करोड़ लोग गाँव से शहर में आ गये हैं। मैं आँकड़े देख रहा था कि अल्मोड़ा शहर की आबादी 30-35 हज़ार और अल्मोड़ा जिले की करीब 6 लाख है। अल्मोड़ा जिले के मात्र 5 प्रतिशत लोग अल्मोड़ा शहर में रहते हैं। अल्मोड़ा शहर की आबादी आगे अवश्य बढ़ेगी। इसको आप लिखकर रख सकते हैं कि आने एवाले एक-दो दशक में यहाँ की आबादी तीस हज़ार से बढ़कर कम से कम एक लाख पहुँच जायेगी। तो जो 70 हज़ार आबादी बढ़ेगी वे कहाँ रहेंगे? औसत परिवार में चार लोग भी हुए तो कम से कम 15 हज़ार नये घर बनाने की ज़रूरत है। इसका प्रोविजन अगर नहीं किया गया तो घर वहाँ बनेंगे जहाँ आप अभी बैठे हुए हैं। लोगों को रहने की जगह चाहिये। सब जगह नियंत्रण रहेगा और कहेंगे कि तुम यहाँ नहीं बना सकते तो लोग और तरीक़े से बनायेंगे। इसलिये यह सोचना ज़रूरी है कि ट्रैफिक, पानी, रहन-सहन, इनका कैसे डेवलपमेंट होगा। भारत की अभी जो शहरी आबादी है वह 35 प्रतिशत है

और चीन की 60 प्रतिशत। हमारी शहरी आबादी बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। यह एक बहुत बड़ा मुद्दा है।

कुछ उदाहरण मैं आपको चीन के बारे में दूँ जिससे आप अन्दाज़ लगा सकते हैं। एक है रेल सिस्टम। भारत की रेल ट्रैक बहुत पुरानी है, चीन से भी पुरानी। यानी पहले शुरू हो चुकी थी। दोनों देशों में रेल ट्रैक की लम्बाई लगभग बराबर है- एक लाख दस हज़ार से एक लाख बीस हज़ार किलोमीटर। लेकिन फ़र्क यह है कि वहां पर करीब बीस वर्ष पहले उन्होंने हाई-स्पीड रेल को बड़ी तेज़ी से बढ़ाया। शुरू में उन्होंने सारी मशीनें आयात कीं।

आज की तारीख़ में एक लाख पन्द्रह हज़ार किलोमीटर की कुल लम्बाई में से करीब सत्ताईस हज़ार किलोमीटर हाई-स्पीड रेल बन गयी है। सोचिये, करीब पच्चीस प्रतिशत। लम्बे मार्ग की जो रेलगाड़ियाँ हैं, जैसे शंघाई से बीजिंग या हांगकांग से शंघाई, ये सब हाई-स्पीड हो गयी हैं। वहाँ हाई-स्पीड का मतलब वाकई हाई-स्पीड है। विनीता और मैं जब चीन में रहते थे तो हम लोग अक्सर हाई-स्पीड ट्रेन में आते-जाते थे। शंघाई से हांगजो, सुजो या अन्य जगह पर। उनकी औसत स्पीड तीन सौ चालीस किलोमीटर प्रति घंटा है! भारत में अभी हम एक सौ साठ किलोमीटर प्रति घंटे की रफ़्तार वाली वाली ट्रेन की कोशिश और प्रयोग कर रहे हैं। यह अच्छी बात है लेकिन आप सोचिये कि वे कहाँ पहुँच गये हैं। वहाँ शंघाई में एक ट्रेन चार सौ तीस किलोमीटर प्रति घंटा के हिसाब से चलती है। वह शहर से एयरपोर्ट आठ मिनट में पहुँचती है। वजह यही है कि चीनी सीखना चाहते हैं कि वे किस हद तक इसको बढ़ा सकते हैं। अब उन्होंने हाल ही में कहा है कि वे एक हज़ार किलोमीटर प्रति घंटे की रफ़्तार वाली ट्रेन शुरू करना चाहते हैं। उसके लिये टनल चाहिये और हाइपर लूप टेक्नोलॉजी वगैरह भी। यह जो सत्ताईस हज़ार किलोमीटर का ट्रैक है वह पुरानी रेल लाइन के समानान्तर ही बना है। मतलब पुरानी रेल लाइन के बगल में ही उन्होंने नई रेल लाइन लगा दी हैं। उसके स्टेशन भी अलग हैं। वहाँ रेलवे स्टेशन हमारे यहाँ के एअरपोर्ट जैसे होते हैं जिनमें बहुत बढ़िया सुविधायें हैं। इससे चीन की अर्थव्यवस्था पर वास्तव में बहुत बड़ा और गहरा असर पड़ा है। मैं उसके बारे में बताऊँगा।

चीन में एक सिस्टम है जिसे हुकोउ कहते हैं। यह आपका शहर का पासपोर्ट जैसा समझिये। मान लीजिये आप अल्मोड़ा के हैं, या मैं अल्मोड़ा का हूँ तो मेरे पास अल्मोड़ा का हुकोउ होगा और मैं नैनीताल में नौकरी नहीं कर सकता। अगर मुझे नैनीताल में नौकरी करनी है तो मुझे वहाँ से अप्रूवल चाहिये। वे आमतौर पर दे देते हैं, ऐसी बात नहीं कि नहीं देते। खासकर मान लीजिये कि अगर नैनीताल, हल्द्वानी या लखनऊ जाना है तो कोई मुश्किल नहीं आयेगी। अगर दिल्ली या मुम्बई जाना है, या चीन के मामले में शंघाई जाना है तो हुकोउ बहुत कंट्रोल करके रखते हैं क्योंकि वे नहीं चाहते कि इस शहर की आबादी और बढ़े। सोचिये, शंघाई शहर की आबादी पहले से तीन करोड़ के करीब हो गयी है। उससे ज्यादा वे नहीं बढ़ने देना चाहते हैं। नतीजा यह हो गया था कि शंघाई में लेबर की बहुत शार्टेज हो गयी थी। हमारे भी जब रेस्टोरेंट खुलते थे तब बाकी सामान तो आसान था, जैसे- पिछले ही साल हमने वहां सात सौ नये रेस्टोरेंट खोले। सोचिये, रोजाना दो नये रेस्टोरेंट खुल रहे हैं चीन में! उसके लिये मशीनें, सिविल कंस्ट्रक्शन, आर्किटेक्चर आदि ये सब तो आसानी से हो

जाता है लेकिन सबसे बड़ी समस्या यह होती थी कि रेस्टोरेंट चलाने के लिये चालीस-पैंतालीस लोग चाहिये, क्योंकि बड़े रेस्टोरेंट होते हैं। शंघाई में लेबर की शार्टेज़ थी।

चीन ने क्या कहा, ये सब प्लानिंग करके रखा था उन्होंने, कि आपका हुकोउ वाला शहर हाई-स्पीड रेल से एक घंटे में तय हो सकता है तो आपको वहाँ का हुकोउ माना जायेगा। मान लीजिये जैसे आप शंघाई में रहते हैं और तीन सौ किलोमीटर दूर आपका गाँव है जहाँ का आपका हुकोउ है तो आप शंघाई में काम कर सकते हैं। इससे पहले जब हम लोगों को इंटरव्यू करते थे तो पहले हुकोउ देखना होता था। लोग मिलते ही नहीं थे। आज की तारीख़ में उनका भाड़ा काफी सस्ता है जिसे लोग ख़ुशी से दे देते हैं। हम लोग भी कर्मचारियों को पूरा भाड़ा दे देते हैं क्योंकि हमें लेबर मिल जाती है। इससे क्या हो गया कि शंघाई में अचानक श्रमिक उपलब्ध हो गये। वे लोग सुबह हाई-स्पीड ट्रेन से आते हैं। इतना तो आजकल किसी भी शहर में लग जाता है। सवा घंटे में पहुँच जाते हैं और सवा घंटे में शाम को वापस। इससे न तो शंघाई में आबादी का प्रेशर पड़ता है न ही लेबर की शार्टेज़ होती है। हाई स्पीड रेल से वहाँ बहुत फ़र्क पड़ा है। इसे उन्होंने अहंकार से नहीं बनाया है बल्कि बहुत प्रैक्टिकल स्टेप लिया है और इसको वे बढ़ाते जायेंगे।

आपको दूसरा उदाहरण देता हूँ। आपको मालूम है कि दक्षिणी चीन में एक द्वीप हांगकांग है। अंग्रेज़ बड़े मक्कार थे। उन्होंने हिन्दुस्तान से अफीम ख़रीदा और चीन में बेचा।

एक ज़माने में चीन में सब अफीमची हो गये थे। फिर चीन सरकार के खिलाफ अंग्रेजों ने लड़ाइयाँ भी लड़ीं और बन्दूक की नोक पर साइन कराकर उन्होंने 1897 से 1997 तक, सौ साल के लिये, हांगकांग निःशुल्क ले लिया। वहाँ उदारवादी आर्थिक पालिसी थी। हांगकांग पहला फ्री पोर्ट था और बहुत जल्दी डेवलप हो गया था। वह 1997 से चीन का भाग हो गया लेकिन फिर भी उन्होंने आज तक उसे थोड़ा अलग रखा। वहाँ पर मानवाधिकार भी थोड़े ज्यादा हैं। उनकी न्याय-प्रणाली यूके की है। प्रेस की भी फ्रीडम है जो चीन में तो बहुत कम है। तो हांगकांग को धीरे-धीरे उन्होंने चीन से जोड़ दिया है। हांगकांग स्टॉक एक्सचेंज एक बहुत बड़ी एक्सचेंज है। अब उन्होंने इसको सिंझेन के साथ कनेक्ट कर दिया है। लेकिन अचम्भे की बात यह है कि हांगकांग, उसके पास मकाऊ द्वीप जो पुर्तगाल की कॉलोनी थी और उसके पास ज्यूहाई- ये शहर जिनकी आबादी कुल मिलाकर 55 मिलियन यानी साढ़े पाँच करोड़ है, ये सब अब एक शहर बन गया है। इसका एक अधिकारी है और एक प्रणाली है। इसको बे एरिया कहते हैं। पहले पर्ल रिवर डेल्टा कहते थे। यह समझ लीजिये चाइना का इकॉनोमिक इंजन बन गया है। यहाँ पर स्टॉक एक्सचेंज भी है। सारी मैन्युफैक्चरिंग होती है। पिछले महीने एक ट्रेन शुरू हुई जो हांगकांग से सिंझेन सीधे जा सकती है। पहले फेरी जाती थी। वहाँ पर एक द्वीप है और बीच में समुद्र था। उन्होंने समुद्र के नीचे सुरंग निकाली है।

मैं आपको तीसरा उदाहरण देता हूँ। आपको पता होगा कि 2008 में बीजिंग में ओलंपिक खेल हुए थे। उसके लिये बीजिंग की काफ़ी कायापलट हो गयी थी। वहाँ पर इतनी भव्य बिल्डिंगें बनी थीं, स्टेडियम बने थे। आपने उद्घाटन समारोह वगैरह में भी देखे होंगे। इसके साथ ही उन्होंने एअरपोर्ट बनाया जो तब दुनिया का सबसे आधुनिकतम एअरपोर्ट माना जाता था। अब एक-दो और बन गये हैं लेकिन अभी भी मेरे ख़याल से विश्व में दस सबसे अच्छे एअरपोर्ट में होगा। अब तो यहाँ मुम्बई में बहुत बढ़िया एअरपोर्ट बन गया है और दिल्ली का भी अच्छा है। लेकिन बीजिंग का एअरपोर्ट बहुत बड़ा है। तो ये 2008 की बात है, दस साल पहले की। लेकिन वे वहीं नहीं रुके। अगले आने वाले बारह महीनों में उन्होंने एक नया एअरपोर्ट बनाया है। बीजिंग में एक जगह है दाक्सिंग। वहाँ बीजिंग का दूसरा एअरपोर्ट बन रहा है जबकि अभी के लिये पहला एअरपोर्ट काफ़ी है। दाक्सिंग एअरपोर्ट बनाने में जो उनको काम करना पड़ा उसके बारे में कुछ आँकड़े आपको दूँ। वहाँ करीब बीस हज़ार किसान थे जिनको विस्थापित करना पड़ा। वे सदियों से वहाँ रहते थे। उनको मुआवजा दिया गया और उनके नुकसान की भरपाई की गयी। आपको बताता हूँ कि क्या-क्या दिया गया। पहले उनको पाँच सौ वर्ग फीट का एक अपार्टमेंट रहने के लिये दिया गया ताकि रहने को कहीं जगह तो हो जहाँ वे जायें। दूसरा, उनको डेढ़-डेढ़ लाख अमरीकी डॉलर यानी करीब एक करोड़ रूपया (सबको एक-एक करोड़) दिया गया। आप सोचिये, मतलब बीस हज़ार करोड़ रुपये का खर्च सिर्फ़ विस्थापन में और वह भी केवल नकद मुआवजा! उसके अलावा उन्होंने तीन सौ डॉलर महीना, यानी लगभग बीस हज़ार रूपया, उनको और दिया है। इससे क्या होता है कि जो बड़े प्रोजेक्ट्स होते हैं, खासकर शहर में... जैसे लन्दन के पास हीथ्रो में नया एअरपोर्ट इसी वजह से अभी तक नहीं बन पा रहा है क्योंकि लोग वहाँ रहते हैं। आप लोगों को कैसे हटा लेंगे? उन्होंने (चीनी सरकार) बड़ा दिल खोलकर सपोर्ट दी है।

वैसे कभी-कभी विस्थापित हो रहे लोग कहते हैं हमें अच्छा नहीं लग रहा है कि हम यहाँ से जा रहे हैं। कभी-कभी बेचारे किसानों के इंटरव्यू भी आते हैं कि हमारे पूर्वज यहीं से हैं। लेकिन वे सब जानते हैं कि जो उनको मिला (विस्थापन के एवज में) वह जायज है। उन्हें डरा-धमकाकर नहीं हटाया गया। दाक्सिंग एअरपोर्ट खुल जायेगा सालभर में। दुनिया भर के सबसे अच्छे आर्किटेक्ट ने उसकी डिज़ाइन बनायी है। सात लाख वर्गमीटर यानी लगभग सत्तर लाख वर्ग फीट कुल क्षेत्रफल वाला एअरपोर्ट है यह! इसकी क्षमता 7 करोड़ पर्यटक सालाना होगी। बीजिंग एअरपोर्ट की क्षमता अभी 9.6 करोड़ है। तो सोचिये 16-17 करोड़ लोग बीजिंग में आ सकते हैं जो कि दुनिया का सबसे बड़ा एअरपोर्ट है।

मैं जब पहली बार चीन गया तो मेरे दोस्तों ने कहा कि ये सब ऊपरी दिखावा है। बीजिंग, शंघाई में ऐसी चकाचौंध है। छोटी जगह में जाओगे तो पता लगेगा कुछ नहीं है। लेकिन मैं सब जगह गया और सभी जगहें देखीं। सरकार ने भी हमको वहाँ जाने में बहुत सहयोग दिया। वहाँ प्रतिबन्धित एरिया भी हैं, जैसे सिंझिआंग जाने के लिये अनुमति लेनी होती है क्योंकि वह एक इस्लामिक एरिया है। वहाँ वीगर लोग रहते हैं और वहाँ पर काफी आतंक होता है। लेकिन हम वहाँ भी गये। छोटी-छोटी जगहों में, गाँवों में, तिब्बत, ल्हासा और उसके आसपास के इलाकों में भी गये। मुझे कोई जगह ऐसी नहीं दिखी जहाँ पर अर्थव्यवस्था अच्छी न हो, ख़ासकर सड़कें बहुत अच्छी न हों।

ये सब कुछ अपनी जगह ठीक है लेकिन सवाल यह है कि हम इससे क्या सीख सकते हैं? और ये सब हुआ कैसे? यह बहुत ही गहरा सवाल है। ये आसानी से होगा भी नहीं और शायद कभी हो भी नहीं। अगर हो तो शायद पचास वर्ष लग सकते हैं। लेकिन इसको करना ज़रूरी है। मैंने आपको अल्मोड़े का उदाहरण दिया। अभी मैं नैनीताल होकर आया। नैनीताल में जहाँ हम लोग रहते थे, पहले वहाँ एक घर था। अब मैं वहाँ गया तो आप सोच भी नहीं सकते कि वहाँ कितने घर बन गये हैं। रास्ते में भी घर बन गये और पैर रखने तक की जगह नहीं है। एक बार, करीब बीस वर्ष पहले, वहाँ स्नो-व्यू के पास एक पुराना बंगला

बिक रहा था। मेरा नैनीताल से काफी लगाव है क्योंकि स्कूल वहीँ पढ़ा था। मैंने सोचा अगर पैसे जुट जायें तो शायद खरीद लें। जब पता लगा की वह रामकृष्ण मिशन का है तो मिशन वालों से मिला। उन्होंने कहा कि हम तैयार हैं देने को लेकिन वहाँ कुछ नहीं कर सकते। आप झील विकास प्राधिकरण वालों से मिलें। घर जल गया है, छत गिर गयी है लेकिन वे आपको कुछ नहीं करने देंगे, क्योंकि वहाँ पर खतरा है। वह पहाड़ी नाज़ुक है। बात ठीक थी। मैं झील विकास प्राधिकरण में गया तो वहाँ एक साहब थे। उन्होंने साफ़ मना कर दिया कि भाई मत खरीदना क्योंकि इसमें आप एक ईंट भी नहीं हिला सकते। टूटी हुई छत भी आप ठीक नहीं कर सकते, इसलिये बेकार है। वहाँ मिशन वालों का स्कूल चल रहा था जिसमें आग लग गयी थी। अबकी बार पता लगा कि वहाँ स्नो-व्यू से लेकर ताल तक सब जगह बिल्डिंग बन गयी हैं। या तो तब बात ग़लत थी कि माउंटेन स्टेबल नहीं है या अब ग़लत है। इसका मुख्य कारण यही है कि आगे की प्लानिंग नहीं हो रही है, केवल अभी की प्लानिंग हो रही है कि अगले साल कितने घर बनायेंगे। लेकिन अगर बड़े पैमाने पर सोचा जाय तो चीन में उन्होंने एक अच्छा काम किया है कि नये-नये शहर बना दिये हैं। ज्यूहाई का नाम मैंने लिया था। बीस वर्ष पहले ज्यूहाई था ही नहीं। वहाँ पर कुछ नहीं था। वहाँ पर समुद्र के खारे पानी वाली जगह थी। वहाँ पर उन्होंने साफ़ करके नया शहर बनाया है। वहाँ मैं गया हूँ। बीस साल पहले भी गया था जब वहाँ पर नया-नया शुरू हुआ था। हम लोग ‘रीबोक’ के जूते वहाँ बनवाते थे। एक और जगह डालिआन है जो बीजिंग के दक्षिण में, कोरिया के रास्ते में, एक बड़ा द्वीप है। वहाँ काफ़ी लोग कोरियाई भाषा बोलते हैं। वहाँ बहुत प्रख्यात अध्यक्ष था जिसका नाम बो क्सिलाई था। उसने बिल्कुल कायापलट कर दी। आज कहा जाता है कि डालिआन का जो बुनियादी ढाँचा है वह दुनिया में सबसे एडवांस्ड है, सिंगापुर से भी ज्यादा! वहाँ आप जायेंगे तो देखेंगे- वहाँ जो रेलें चलती हैं, जो गाड़ियाँ चलती हैं, जो घर बनते हैं। उन्होंने यह किया कि घर पहले बना दिये। उसके बाद लोगों को हुकोउ दे दिया कि डालिआन में हम दो लाख हुकोउ दे रहे हैं। गाँव भर से सबके एप्लीकेशन आ गये कि हम जाने को तैयार हैं, सुना है डालिआन में बढ़िया आबोहवा है। तो चले गये सब वहाँ पर।

कुछ बातें मैं बताना चाह रहा था। चीन में, बल्कि यहाँ से अगर आप पूर्वी दिशा में जायें तो पहले तिब्बत आएगा। लेकिन उसके आगे अगर चले जायें तो पूरे पूर्वी और दक्षिणी एशिया में जितने देश हैं उन सबने भारत से सीखा है। क्योंकि ये सब बौद्ध-धर्म फॉलो करते हैं।

चीन में चाहे उन्होंने धर्म को बिल्कुल दबाया हुआ है (वे नहीं चाहते कि किसी तरह का धर्म हो। तिब्बत में नहीं कर पाए लेकिन अन्य जगहों पर दबाया हुआ है) लेकिन अभी भी सत्तर प्रतिशत चीनी लोग कहते हैं की हम बौद्ध हैं। जापान तो खैर है ही। वियतनाम, म्यांमार कम्बोडिया- सारे बौद्ध। केवल इंडोनेशिया व मलेशिया में इस्लाम है और फ़िलीपीन्स तथा कोरिया में थोड़ा ईसाई है, बाकी सब बौद्ध धर्मी हैं। चीन में भगवान बुद्ध और भारत के लिये इस बारे में बहुत ही ज्यादा सम्मान है। बल्कि चीनी लोग अपने को चीनी नहीं कहते हैं। चीनी में जो शब्द है उसको 'झोंग गुओ' कहते हैं। मतलब मध्य-राज्य, संसार का केन्द्र। ऐसा अहंकार की भावना से बिल्कुल नहीं लेकिन वे चीन को ही मानते हैं कि चीन है जो है। चीन में दो बड़े प्रभाव पड़े हैं- एक तो भगवान बुद्ध का जिसके बारे में आपको कुछ बताऊँगा। दूसरा मशहूर दार्शनिक थे जिनको वे कोंजी कहते हैं। चीन व जापान में कोंजी कहते हैं। अंग्रेज़ उनको कन्फ्यूशिअस कहते हैं। कन्फ्यूशिअस और गौतम बुद्ध करीब-करीब एक ही समय में थे- पांच सौ-छह सौ वर्ष ईसा पूर्व, आज से करीब ढाई हज़ार साल पहले। जब कन्फ्यूशिअस की मौत हुई (करीब सत्तर साल की उम्र में) तब गौतम बुद्ध चार साल के थे। तब वे राजा थे। फिर पन्द्रह-बीस साल की उम्र में पूरा राज त्याग करके ज्ञान प्राप्ति के लिये निकल गये थे। लगभग पच्चीस वर्ष तक उन्होंने बहुत कड़ी तपस्या की। फिर बौद्ध गया में एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ कर उनचालीस दिन तक ऐसी तपस्या की कि वे उठे भी नहीं। तब उनको ज्ञान प्राप्ति हुई। उसके बाद चालीस वर्ष उन्होंने भारत भर में, ज्यादातर

सारनाथ में, लगभग अस्सी हज़ार उपदेश दिये। उनकी मृत्यु गोरखपुर में हुई। भगवान बुद्ध और कन्फ्यूशिअस, दोनों की जो परिकल्पना है वह अनीश्वरवादी है। बुद्ध ने ईश्वर को नकारा नहीं है, बल्कि उनके शिष्य तो बुद्ध को ही भगवान मानते हैं जब कि उन्होंने कहा था कि ऐसा कभी मत करना। बुद्ध की पूजा करते हैं, खासकर महायान बुद्ध वाले और चीन में भी। लेकिन बुद्ध ऐसे पहले क्रान्तिकारी दार्शनिक थे जिन्होंने कहा कि आपको अगर दुःख के चक्र से निकलना है और अगर आप निर्वाण प्राप्त करना चाहते हैं तो कहीं और मत देखिये, अपने अन्दर देखिये। आपके कर्म और आपके विचार, यही दो चीजें आपको निर्वाण दिला सकती हैं। बाहर मत देखिये। वे भिक्षुक बन गए थे। खाना भी औरों से माँग कर खाते थे। जब उनको ज्ञान प्राप्ति हुई तो उन्होंने यही सिखाना शुरू किया कि चार सत्य हैं और आष्टांग मार्ग है। आष्टांग मार्ग में सम्यक दृष्टि, सम्यक स्मृति, सम्यक कर्म, सम्यक विचार शामिल हैं।

जब भगवान बुद्ध का अंत समय आया तो वह काफी बीमार थे। पूरी कहानी **'महापरिनिर्वाण सूक्त'** ग्रन्थ में विस्तार से लिखी हुई है। आनंद नाम के उनके एक शिष्य और भक्त थे, उनके सबसे क़रीबी। आनंद ने पूछा कि तथागत आप जब नहीं रहेंगे तो हमारा मार्गदर्शन कौन करेगा? भगवान बुद्ध के चारों ओर अनेक भिक्षुक जमा थे। उन्होंने आनंद से कहा था, **"अप्प दीपो भवः"**, अर्थात अपना दीपक ख़ुद बनो। यही तर्क है बुद्ध की शिक्षा का। उसमें बहुत गूढ़ बात है, बल्कि पाली से जो अनुवाद हुआ है उसमें कुछ विद्वानों का मानना है कि बुद्ध ने "अप्प द्वीपो भवः" कहा था जिसका और भी गूढ़ अर्थ हो सकता है। बुद्ध का चीन पर बहुत असर पड़ा है बल्कि चीन, जापान, इन सब देशों पर भगवान बुद्ध

की परिकल्पना और उनकी शिक्षाओं का बहुत ही गहरा असर पड़ा है।

जैसा कि अभी बताया कि चीन का जो शास्त्रीय साहित्य है वह प्राचीन भी है और उसमें बहुत विविधता भी है। इसमें ऐतिहासिक उल्लेख भी बहुत सारे हैं। उनके पाँच मूल ग्रन्थ हैं। वे सब कन्फ्यूशिअस ने लिखे थे। उन्होंने सिखाया था कि जो बात सबसे अहम् है वह है विचार-शक्ति और विवेक-बुद्धि- चैतन्य, ज्ञान, तर्क जिसको हम कहते हैं सूझबूझ, होशोहवाश। भगवान बुद्ध ने भी यही कहा था की पूर्ण जाग्रत अवस्था में कोई भी काम करो तो पुण्य होगा, सोये में मत करिये। मतलब बिना सोचे-समझे। अपने निजी अनुभव को बहुत महत्त्व दीजिये। यही कन्फ्यूशिअस ने सिखाया है। तो चीन में बचपन से ही बच्चों को सिखाया जाता है कि जो नकारात्मक चीजें होती हैं- प्रतिरोध, लालसा, क्रोध आदि- ये ग़लत हैं। विवेक बुद्धि और चैतन्य, ये सब अच्छा है। दूसरी बात जो कन्फ्यूशिअस ने सिखायी थी चीन में, वह है सरकार के प्रति आदर। राजा और सरकार के प्रति आदर कर्तव्य था और आज भी है। मैं सोचता हूँ यह धारणा जब तक नहीं आयेगी, जब तक लोगों में यह मानसिक बदलाव नहीं आयेगा कि मैं अगर कूड़ा फैंक रहा हूँ तो न फैंकू... ये चीजें सिखाने से नहीं आतीं, न ही न्याय-प्रणाली से आती हैं, न कानून से आती हैं। नैनीताल में भी देख रहा था की जो घर बने हुए हैं वे लोग बेचारे क्या करें? उनको भी घर बनाना है, कहीं रहना है। जाड़ों में कहाँ ठण्ड में रहेंगे? कोई अन्य तरीका नहीं है तो बनाते हैं। या तो भ्रष्ट अफसरों को घूँस देकर बना लेते हैं, या फिर एक मंजिल का मकान होगा उसमें दूसरी मंजिल बना लेंगे। यह

जो सोच है उसमें चाहे कुछ भी कर लें, कितनी प्लानिंग कर लें, जब तक मानसिक बदलाव नहीं आयेगा बहुत मुश्किल है। लेकिन अच्छी बात यह है कि उन सबका प्रेरणा-स्रोत तो भारत ही था। इसलिये भारत में भी वैसी सोच आनी चाहिये। जिस हद तक हम लोग ख़ुद कर सकें, अपने निजी जीवन में करें तो अच्छा है। यह बहुत ज़रूरी बात है। मैं सोचता हूँ इसके बिना चीन इतनी प्रगति नहीं कर पाता। जब 1940 से 1960 के दशकों में माओवादी आये तो उन्होंने इसमें काफ़ी तोड़-मरोड़ की। चीन के इतिहास में वह काफ़ी ख़राब समय था। कई बुद्धिजीवियों सहित करोड़ों लोगों को माओवादियों ने मार डाला था। वे लोगों के हाथ देखते थे। अगर नाख़ून में मैल है तो ठीक है और अगर साफ़ हैं तो अन्दर। वे (बंदियों को) अंतरिम कैम्पों में ले जाते थे और सिखाते थे।

बुद्ध भगवान के समय में भी ब्राह्मणवाद ज्यादा बढ़ गया था और जैसा कि शास्त्रों में भी लिखा हुआ है, बुद्ध के समय में जो राजा थे वे एक समय में छः-छः सौ पशु-पक्षियों की बलि चढ़ाते थे। तो इस तरह की बिल्कुल घ्रणास्पद व मिथ्या चीजें थीं जिनको बुद्ध ने नकारा और लोगों ने भी माना कि ये बातें ठीक नहीं हैं।

भारत में जोश ज्यादा है और चीन में होश थोड़ा ज्यादा है। वहाँ लोग थोड़ा समझ कर काम करते हैं। यह मैंने अपने निजी जीवन में भी देखा है। जैसा ललित बता रहे थे, हमारी कंपनी में साढ़े चार लाख कर्मचारी हैं। हर साल हम करीब 20-30 हज़ार लोगों की वहाँ भर्ती करते हैं। तेरह सौ शहरों में हमारे करीब साढ़े आठ हज़ार रेस्टोरेंट हैं। उनमें रोज़ सुबह मीटिंग होती है। मैनेजर सब कर्मचारियों को बाहर लेकर जाता है। वह ऊपर सीढ़ी में खड़ा होता है और सब स्टाफ नीचे। फिर वे लोग वहाँ नारे लगाते हैं कि हम आज इतना अच्छा काम करेंगे, आज हमारा लक्ष्य यह है। अपने ऑफिस में भी मैं देखता था हम पैंतालीस मिनट का लंच ब्रेक देते थे तो कर्मचारी ऐसे ही मेज पर सिर रख कर सो जाते थे। वे सोचते थे कि अगर बाहर जायेंगे तो टाइम लगेगा। पैंतालीस मिनट का टाइम पूरा होते ही वे फिर काम में जुट जाते। तो यह मानसिक बदलाव बहुत आवश्यक है। इसके बारे में अंत में कुछ और बताऊँगा।

चीन में लगभग छः सौ ईस्वी में जब थांग डायनेस्टी थी, समझिये चौदह सौ वर्ष पहले, तब बौद्ध मत का प्रभाव वहाँ भी बहुत था। सम्राट अशोक ने, जैसा आप लोग जानते ही हैं 17 हज़ार स्तूप बनवाये थे और जगह-जगह स्तम्भ लगे हुए थे। चीन में भी शंघाई के बीच में जिंगआन मंदिर में अशोक स्तम्भ है जिसमें चार शेर, स्वास्तिक बने हुए हैं और

चारों ओर बुद्ध की मूर्तियाँ हैं। शियान में, जो चीन के पूर्वी भाग में स्थित है, वहाँ से, आपने सुना होगा, ह्वेन्त्सांग जो मशहूर पर्यटक थे, भारत आये थे। आश्चर्य की बात यह है कि जैसे हमारी रामायण और भगवान राम के चरित्र से इतनी प्रेरणा मिलती है, वहाँ ह्वेन्त्सांग को भी वैसा ही दर्ज़ा दिया गया। बल्कि मिंग डायनेस्टी में उसके दो-तीन सौ साल बाद एक किताब लिखी गयी, **'जर्नी टू द वेस्ट'** याने पश्चिम की यात्रा। आप उसको देख सकते हैं कि यह कितनी अच्छी किताब है! **'द ग्रेट थांग डायनेस्टी रिकॉर्ड ऑफ़ द वेस्टर्न रीजन'।**

ह्वेन्त्सांग ढूँढने गया था कि बुद्ध भगवान ने जो सिखाया था वह असल में क्या था। देखिये बुद्ध भगवान की कोई एक किताब, 'बाइबिल' की तरह नहीं है। उन्होंने अस्सी हज़ार प्रवचन दिये थे और हर बार परिस्थिति अलग थी। तब राजगीर में एक महा बौद्ध-सम्मलेन हुआ था जिसमें 'त्रिपिटक' नामक ग्रन्थ छपा था। ह्वेन्त्सांग उसको ढूँढने के लिये निकले थे। जो भगवान राम की कहानी है बिल्कुल वैसी ही वहाँ भी है। एक तो वे मानते हैं कि जब ह्वेन्त्सांग यहाँ हिमालय से अफगानिस्तान जा रहे थे (क्योंकि अफगानिस्तान तब बुद्धिस्ट था। वह बामियान जा रहे थे जो तब बौद्ध-शिक्षा का बड़ा केन्द्र था।) तो वानर सेना ने उनकी मदद की और वानरों के राजा ने उनको मार्ग दिखाया। वहाँ हर साल टेलीविज़न में भी यह दिखाया जाता है, जैसे हमारे यहाँ रामायण होती है, वही कहानी और उनकी यात्रा भी चौदह वर्ष की थी। भारत में वे तेरह वर्ष तक थे। ह्वेन्त्सांग ने सभी जगहों का भ्रमण किया। यहाँ से किर्गिस्तान, उज्बेकिस्तान, अफगानिस्तान, सारनाथ, कन्नोज होकर फिर वे नालन्दा

गये जहाँ प्रख्यात् विश्वविद्यालय था। वहाँ पर उन्होंने सब जानकारियाँ जमा कीं। यहाँ के जितने राजा थे वे इससे बहुत प्रभावित हुए कि इतनी दूर चीन से आये हुए हैं। उन्होंने उनको पूरा सहयोग दिया। उनको एक हाथी भी दिया गया, दस-बारह घोड़े भी दिये गये। उन्होंने सारे मठों से करीब तीस-चालीस हज़ार दस्तावेज़ जमा किये और वापसी में चीन ले गये। वापस लौटने पर उनका वहाँ बहुत बड़ा स्वागत हुआ। थांग राजा ने उनका बहुत स्वागत किया। आप सोच सकते हैं कि कितना उनका भारत की ओर आदर है। हमको वे इन्तु कहते हैं। जब वे पूछते हैं व्हेर आर यू फ्रॉम, वे इंडिया नहीं समझते। इन्तु कहना पड़ता है। इन्तु उनके लिये ज्ञान का केन्द्र है। अब यही समझ हममें भी आ जानी चाहिये।

मैं आपको आगे, 1987 में ले चलता हूँ। आपको याद होगा कि तब सारे विश्व में एक आर्थिक संकट आया था। 1974 में भी एक आया था जब तेल के भाव बहुत बढ़े थे। 1987 तक जितने भी कम्युनिस्ट देश थे वे सब कड़की पर उतर आये थे। किसी के पास पैसा नहीं था। रूस में मिखाइल गोर्बाचेव थे। चीन में देंग शियाओपिंग थे हमारे यहाँ तब अलग लोग थे, मुख्यतः राजीव गांधी थे। सभी जगह यह बदलाव आया और यह रियलाइज़ेशन हुआ कि निजी पूँजी और निजीकरण से बहुत फ़ायदे हैं। सरकार काम कर सकती है लेकिन आर्थिक व्यवस्था को बढ़ाने में प्राइवेट सेक्टर का बहुत बड़ा हाथ होता है।

सभी जगह यह बदलाव आया; रूस और भारत में भी आया। 1987 में चीन में तो एकदम उदारीकरण कर दिया गया था। भारत धीरे चला और उदारीकरण करने में चार साल लगाये। 1991 में यह हालत हो गयी थी कि, आपको शायद याद होगा, 67 टन सोना ट्रकों

में भर कर पालम एअरपोर्ट ले जाया गया और हवाई जहाज से बाहर भेजा गया था। उसमें से 47 टन 'बैंक ऑफ़ इंग्लैंड' को दिया गया था, 20 टन 'यूनाइटेड बैंक ऑफ़ स्विट्ज़रलैंड' को दिया गया था। तब हमें 600 मिलियन डॉलर का लोन मिला था और हम लोग अपनी गाड़ी चला पाये थे। ये नौबत आ गयी थी! चीन में उस समय देंग शियाओपिंग थे। अब माना जाता है कि उनका चीन पर, ख़ासकर वहाँ की आर्थिक नीति पर माओ से भी ज्यादा प्रभाव रहा है। जब उनसे पूछा गया कि कम्युनिस्टों ने तो वर्षों से हमें सिखाया है कि सबका सरकारीकरण/राष्ट्रीयकरण होना चाहिये, सब सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति है और निजी पूँजी बुरी बात है। देंग शियाओपिंग ने कहा था कि **बिल्ली किस रंग की है इससे मुझे फ़र्क नहीं पड़ता; सवाल यह है कि वह चूहे पकड़ती है या नहीं।** यह कथन चीन में मशहूर हो गया था और अभी तक लोग कहते हैं। मतलब फ़र्क नहीं पड़ता कि प्राइवेट कम्पनी है या सरकारी कम्पनी। सवाल है उसका उत्पादन कैसा है और गुणवत्ता कैसी है। इसके बाद उन्होंने क्या किया कि उनके पास दो बड़े एडवांटेज थे जो भारत के पास नहीं हैं। एक तो हांगकांग का द्वीप था जहाँ पर फ्री-मार्किट था। हांगकांग बहुत डेवलप हो गया था। हम तो 1980 के दशक से वहाँ जाते थे। सन 1987 तक बहरत और चीन अर्थव्यवस्था में लगभग बराबर थे। चीन थोड़ा आगे था लेकिन ज्यादा नहीं। 1960-80 तक कोरिया भी हमारे बराबर था, बल्कि 1976 तक दुबई में रुपया चलता था, सब इलाकों में। लेकिन 1987

में बहुत उदारीकरण किया गया, ख़ासकर चीन में। आपको मैं जो बता रहा हूँ और शंघाई, डालिआन के जो उदाहरण दिये हैं- बड़ी-बड़ी सौ मंजिल की इमारतें बना रहे हैं। फ्लोर-

एरिया रेश्यो (या फ्लोर स्पेस इंडेक्स) जो दिल्ली में डेढ़ है वहाँ बीस है और हांगकांग में एक सौ है। मतलब आप एक सौ वर्ग मीटर क्षेत्रफल में सौ मंजिल की इमारत बना सकते हैं। न्यूयॉर्क में भी ऐसा ही है। सब जगह नहीं करना चाहिये लेकिन कुछ जगह ज़रूर कर सकते हैं। भारत की तरह जापान में भी भूकंप बहुत आते हैं लेकिन जापान में बड़े आराम से 4-5 मंजिल की इमारतें पहाड़ों में बना लेते हैं क्योंकि अब तकनीक आगे बढ़ चुकी है।

बाहर से तकनीक लाना, अहंकार न होना, लोगों से सीखना और आयात में बहुत ही उदारवाद- ये चीन ने बहुत अच्छी तरह किया है जो हमारे यहाँ अभी तक नहीं हो पाया है। अभी भी हमारा मानसिक दृष्टिकोण यह है कि सब काम भारत में होना चाहिये। सब काम नहीं हो सकता। कुछ काम हम बहुत अच्छा करते हैं- सॉफ्टवेयर, हेंडीक्राफ्ट का काम इतना अच्छा करते हैं! लेकिन कुछ काम हैं जो चीनी लोग बहुत अच्छा करते हैं। वे चीजें चीन से मंगा सकते हैं तो इसमें क्या हर्ज़ है? अगर निजी पूंजीपतियों को अप्रूवल दिया जाये, जैसे बहुत सारे देशों में फॉरेन-एक्सचेंज से कंट्रोल हटा दिया गया है ताकि मान लीजिये आपको जर्मनी से कुछ आयात करना है तो आप यूरो का इंतजाम कीजिये, सरकार के पास मत आइये। लोग आयात करते हैं और उसके बाद वे निर्यात भी करते हैं क्योंकि उनको कोई मशीन बनाने के लिये भी कोई मशीन चाहिये ना। कुछ चीजें हैं जो कुछ देश बनाते हैं। भारत में मैं देख रहा हूँ, चालीस-पैंतालीस साल हो गये देखते-देखते, कि जो भ्रष्टाचार की जड़ थी वह तीन जगहों से आयी हुई थी- पहला होता था डायरेक्टर जनरल ऑफ़ फॉरेन ट्रेड। वहाँ मैंने बहुत एड़ियाँ घिसी हैं क्योंकि हिन्दुस्तान लीवर में काफी माल आयात करते थे। सीधे तरीक़े से वहाँ कुछ कर ही नहीं सकते थे। हम लोग काम ही नहीं कर सकते थे क्योंकि हम लोग घूस देने को तैयार नहीं थे। उस ज़माने में फ़िल्म इम्पोर्ट होती थी, कोडक फिल्म। फिल्म इंडस्ट्री तो सारी कैश में चलती है, आपको मालूम है। वहाँ पर कालाधन बहुत होता है। फिर वहाँ से ये चक्र शुरू हुआ कि फिल्म इम्पोर्ट करने के लिये अगर आप किसी भ्रष्ट अफसर को कल्टीवेट कर लें तो आप अपना सामान ला सकते हैं। दूसरा, सबसे बड़ा भ्रष्टाचार डिफेन्स में था और आज भी है। आज राफ़ेल एयरक्राफ्ट के बारे में इतना विवाद उठ रहा है। सच्चाई क्या है, कोई नहीं जानता। हमारा मानना है कि मोदी साहब बहुत ईमानदार हैं। जहाँ तक हम देख रहे हैं मेहनती आदमी हैं। दुनियाभर में उनका यही रेपुटेशन है। अमेरिका में भी सब लोग कहते हैं कि आप भाग्यशाली हैं कि आपको मोदी जैसा आदमी मिला है जो अठारह घंटे काम करता है। निजी रूप से वह बहुत ही ईमानदार हैं। डॉ मनमोहन सिंह तो बहुत ही ईमानदार बल्कि संत आदमी थे, निजी रूप से। उन पर किसी ने भी उंगली नहीं उठायी। न

उनकी मंशा थी और न उन पर कोई पारिवारिक प्रेशर थे। यह सिस्टम की ग़लती है, लीडर की ग़लती नहीं है। इसमें जो मुख्य है वह है नियंत्रण। यहाँ सरकार कण्ट्रोल करती है क्योंकि उदारवाद उन्होंने कभी भी नहीं सीखा। अब जैसे मान लीजिये यहाँ पहाड़ है। कोई पहाड़ वे चिन्हित कर दें कि बीस एकड़ ज़मीन हम देते हैं। इसे आप डेवलप कर लीजिये। पन्द्रह हज़ार घर बनेंगे और उसको आप नया नाम दे दीजिये। इसी तरह मुम्बई में बेकबे-रिक्लेमेशन बना था, नॉएडा बना था और ओखला बना था। आजकल वह बंद हो गया है क्योंकि लोग डर रहे हैं कि किसी को हमने अगर परमिशन दे दी तो कल को हम पर ही आरोप आयेगा कि आप भ्रष्ट हैं। तो यह मामला जाम हो गया है। कई चीजें हैं लेकिन उदारीकरण बहुत आवश्यक है। अब देखिये, सुरक्षा के क्षेत्र में आजकल आप जानते हैं कि ड्रोन बनने लगे हैं। सब जगह, अब तो शादियों में भी आजकल ड्रोन दिखते हैं। अब लड़ाईयां ड्रोन से लड़ी जा रही हैं। कौन अपने पायलट को भेजेगा। डर है कि उसको गोली न लग जाये। ड्रोन भेजते हैं जिसमें कोई पायलट ही नहीं है। एक लड़का बैठा रहता है दूर ऐरिजोना में जो कंप्यूटर स्क्रीन पर देख रहा होता है, बम फैंक देता है और लोग मारे जाते हैं। पाकिस्तान में इस तरह से अनेक तालिबानियों को मारा गया है। ड्रोन का दो-तिहाई प्रोडक्शन चीन में होता है जिसे डीजेआई नाम कि एक प्रतिष्ठित कम्पनी बनाती है। बल्कि अब अमेरिकी सरकार को समझ आयी है और उन्होंने उनसे खरीदना बंद कर दिया है क्योंकि उनको डर है कि उनके ड्रोन में ऐसा सॉफ्टवेयर हो सकता है कि कल चीन उनके ड्रोन कहीं उन्हीं के ऊपर न दाग दे। कहने का मतलब है कि ये सब निजी कम्पनियाँ हैं। मैंने आपको डालिआन का उदाहरण दिया। वहाँ पर वांडा ग्रुप चाइना नाम कि एक प्राइवेट कम्पनी है जो अम्बानी की तरह है। वे भ्रष्ट होते होंगे परन्तु मेरे ख़याल से, याद रखियेगा बिल्ली किस रंग की है इससे फ़र्क नहीं पड़ता; सवाल यह है कि वह चूहा पकड़ती है कि नहीं। इमारतें बन रही हैं कि नहीं, आप अपनी आँखों के सामने देख और समझ सकते हैं। चीन इतनी दूर है भी नहीं यहाँ से। दिल्ली से पाँच घंटे की फ्लाइट है अगर आप वहाँ जायें और देखें तो आपको स्पष्ट नज़र आयेगा कि इमारतें आजकल कितनी फ़र्क हो गयी हैं। बिल्डिंग टेक्नीक बिल्कुल बदल गयी है। बिल्डिंग अब ग्लास व धातु की बनती हैं। उसमें बालकनी वगैरह नहीं होतीं जो यहाँ पर दिखाई देती हैं। इसका एक मुख्य कारण है उदारीकरण जो अभी भारत में नहीं है। अभी समय नहीं है लेकिन अगर सवाल हो तो मैं उसका जवाब ज़रूर दूंगा की हर क्षेत्र में उदारीकरण की आवश्यकता है। निजी पूँजीपतियों को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। उसमें गड़बड़ी होगी तो नियंत्रण रखना ज़रूरी है। अमेरिका में भी सिक्योरिटी एक्सचेंज कमीशन है जिससे सब घबराते हैं। जैसे यहाँ

सीबीआई का डर होता है वहाँ उनका भी होता है। आज की तारीख़ में माइक्रोसॉफ्ट, गूगल जैसी प्राइवेट कंपनियां, जिन्हें हिन्दुस्तानी चला रहे हैं, अच्छा काम कर रही हैं।

मैं यह आपसे कहना चाहता हूँ कि जैसे आप 'कौन बनेगा करोड़पति' प्रोग्राम तो देखते ही होंगे, अमिताभ बच्चन वाला। उसमें अमिताभ बच्चन हमेशा बताते हैं कि सीधे आप सात करोड़ के सवाल पर नहीं पहुँच सकते। आपको अनेक पड़ाव पार करने पड़ेंगे। वहाँ पहुँचने के लिए आपको काम करना होता है।

मेरे हिसाब से यहाँ पर जो बुनियादी ढाँचे की बात हो रही है यह सब हो सकता है लेकिन उसके लिये दो पड़ाव पार करने होंगे। पहला, जो मैंने कहा मानसिक बदलाव, जिसमें होशोहवाश, रैशनल थिंकिंग। गुस्से या आक्रोश में जो हिंसा हो रही है आजकल। अगर जनता को उकसाया जाये तो उसमें वैसी ही सोच जाती है। इसे बदलना होगा। इसके लिये मेरे पास कोई समाधान नहीं है। या तो सियासी रूप से आएगा या फिर कोई दार्शनिक आएगा। दूसरा पड़ाव भी आवश्यक है। इसका बिना कुछ नहीं हो सकता। हम जानते हैं कि जब भारतीय लोग बाहर जाते हैं तो उनका व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है। वहाँ कोई गन्दगी नहीं करता, कोई कूड़ा नहीं फेंकता। हिन्दुस्तानी मॉडर्न सिटीजन माने जाते हैं, ख़ासकर अमेरिका में आजकल माना जाता है कि जो हिन्दुस्तानी हैं वे सबसे अच्छे नागरिक हैं क्योंकि वे कभी

क्राइम नहीं करेंगे, डर कर रहेंगे, मेहनत से काम करेंगे और बच्चों को पढ़ायेंगे। लेकिन हिन्दुस्तान में आकर सिस्टम ऐसा हो गया है कि कल हम भी सड़क में जा रहे थे तो मैं ड्राईवर से कह रहा था कि हॉर्न मत बजाओ। लेकिन वह बेचारा क्या करे? सभी बजा रहे थे। बिना हॉर्न बजाये कोई हटता नहीं है। नैनीताल की हालत देखकर तो अबकी बार बुरा लगा।

लेकिन अभी देर नहीं हुई है। जो हो चुका वह हो चुका। उसे कोई नहीं बदल सकता। जो इमारतें बन गयी हैं उन्हें तोड़ेंगे थोड़ी? लेकिन यह सोच कर चलना पड़ेगा कि अगले दशक में सत्तर हजार लोग अल्मोड़ा में जब आयेंगे तो वे कहाँ रहेंगे? वे किस सड़क पर ड्राइव करेंगे? इसमें निजी सेक्टर का बहुत महत्त्व होना चाहिये, जैसा कि चीन ने दिखाया है। अगर ये दो पड़ाव हम पार कर सके तो नि:संदेह हम बुनियादी ढाँचा बदल सकते हैं। इसके बदलने से ही पूरी अर्थव्यवस्था बदलती है, इसके बिना कुछ भी करना बहुत मुश्किल है। अगर आदमी ऑफिस टाइम पर पहुंच ही नहीं पायेगा तो काम क्या करेगा? यहाँ पर जितने निर्यातक हैं उन्हें कितनी देरी होती है! यदि यहाँ से मुम्बई पोर्ट ट्रक भेजते हैं तो कभी कहीं बन्द हो गया, कभी कुछ हो गया, कभी सड़क टूटी हुई है। आर्थिक व्यवस्था में बदलाव लाने के लिये बुनियादी ढाँचे को बदलना होगा।

अंत में मैं आपसे यही कहूँगा कि हमें अक्सर बचपन से यह बताया गया है कि हम पश्चिम कि ओर देखें क्योंकि वहीं ज्यादा डेवलपमेंट है, खासकर अमेरिका में, इंग्लैंड में, यूरोप में। लेकिन आज जो सबसे ज्यादा डेवलपमेंट हो रहा है वह पश्चिम में नहीं हो रहा है बल्कि यहाँ एशिया में हो रहा है और उसका परम उदाहरण है चीन। चीन के अलावा और भी

हैं। जापान तो पहले ही हो चुका था। जापान की समस्या है कि उनकी आबादी नहीं बढ़ रही। लेकिन चीन में तो आबादी कि कोई समस्या नहीं है। वियतनाम, थाईलैंड, फ़िलीपीन्स - इन सब देशों में बड़ी तेज़ी से तरक्की हो रही है, खासकर बुनियादी ढाँचे में। इनसे हम जितना सीख सकें। पास भी हैं और आसान भी होगा। मैं अपना व्याख्यान यहाँ समाप्त करता हूँ।

***

The Tenth B D Pande Memorial Lecture- March 30, 2019

Ramchandra Guha

Why Gandhi Still Matters

जैसा ललित जी ने कहा, मेरी हिन्दी थोड़ी ढीली है, लेकिन इसके लिए मैं माफ़ी नहीं मागूंगा। मैं आपको एक कहानी बताऊंगा। करीब 1960 में राम मनोहर लोहिया जी एंटी-कांग्रेस फ्रंट बनाना चाहते थे। वे जाने-माने स्वतंत्रता-सेनानी और गांधीजी के बड़े निकट सहयोगी सी. राजगोपालाचारी से मिलने मद्रास गए। लोहिया जी की तरह ही उन्होंने भी कांग्रेस छोड़कर अपनी पार्टी शुरू की थी। लोहिया जी ने समाजवादी पार्टी और राजाजी ने स्वतंत्र पार्टी। दोनों की बातचीत हो रही थी कि कैसे जॉइंट अपोजिशन फ्रंट बनायेंगे। लोहिया जी बिल्कुल अड़े थे कि हम अंग्रेज़ी हटाओ आन्दोलन भी चलाएंगे। वैसे लोहिया जी तीन चीजें हटाना चाहते थे- नेहरु, क्रिकेट और अंग्रेज़ी। राजाजी इनमें से केवल नेहरु हटाओ पर सहमत थे। उन्होंने लोहिया जी को यह जवाब दिया-

"If Saraswati is the Goddess of language, she has given birth to English. So English is also an Indian language."

So, that is my defence for speaking to you in English today.

I am greatly honoured to be here, to be speaking in memory of B D Pande whom I had the great privilege meeting in his ancestral house in early 1990s when I had come here. I think the greatness of B. D. Pande was that while he travelled the world and held many

important posts all over India, he never lost his connection with his homeland. Unlike many other people of that distinction and achievement, who probably would find it very easy to find a plot in Vasant Vihar in Delhi and other such places, he chose to return to his motherland and serve it.

I would speak to you today on Gandhi, a subject on which I have spent the last 15- 20 years working. I am going to offer to you ten reasons why Gandhi still matters. This is the 150th birth anniversary of Gandhi and it's more than 70 years since he died. But does he still matter? Should he matter? I will offer ten solid reasons why Gandhi, his life, his examples and his ideas still matter in the second decade of the twenty first century.

The first reason why Gandhi matters is that he gave India and the world a means of resisting unjust authority without using force yourself. I refer to his invention of the technique of *satyagraha* which of course was used very widely during the freedom struggle, but after the freedom struggle too. In front of me sitting two great Uttarakhandis. I should not tell their names. One is the man and one

is the woman, one is wearing a *topi and one is not wearing a topi*. They have shown through their work how you can resist the destruction of forests, rampage, alcoholism and degradation caused to the landscape and the social fabric by mining. How can you resist these peacefully, not violently, collectively and shame those who are promoting destructive practices. But of course, greatness of Gandhi's ideas is that they are not restricted to the world. So, *satyagraha* has in particular, was used extremely successfully, as you know, by Martin Luther King to promote racial harmony, racial equality in America. Also, what is less known is that movements of 1989 in Eastern Europe which brought down the Soviet Empire, movements like Solidarity in Poland, Vaclav Havel in Czechoslovakia also used Gandhian made techniques of non-violent resistance. So the first reason for Gandhi matters is that he gave us a weapon to fight injustice, a weapon that involves shaming the opponent rather than killing or beheading or blowing head or house of the opponent.

The second reason for Gandhi still matters is that he loved his country and his culture. देश-भक्त तो ज़रूर थे, लेकिन देश में जो समस्याएँ थीं, अन्दर जो गड़बड़ी थी उनको भी समझते थे।

He loved his country; he loved his culture, but did not think it was perfect. He recognised what was wrong with Indian society and spent his life trying to correct, particularly the injustices against dalits and women. If we look at Indian society it is divided in many ways. It is divided vertically in many ways by religion, language, and ethnicity and so on. I will come to that. It is also divided horizontally by class, by caste and by gender. Gandhi recognised that if we, Indian men oppress Indian women and if upper castes Indians oppress lower caste Indians, what moral claim did they have to claim freedom from the British rule? How could they tell the British you leave our country, we want freedom while denying freedom to large sections of their own population? He loved his country and his culture, but recognised the problems and imperfections within it. He was not a blind '*desh-bhakt*' who thought his country was perfect in everything. It was not and that is not even today.

The third reason that Gandhi matters is that while he was a deeply devout Hindu, he refused to define citizenship on the basis of faith. Pakistan could be a Muslim country, Israel could be Jewish country, America if it wished could be a Christian country, but India was not, in Gandhi's eyes, a Hindu country. So, just as caste and gender divided India of Gandhi's day, even India of our day, divided it horizontally, religion divided it vertically. Gandhi spent his whole life seeking to build bridges between people of different religious faiths. He lived for it, and you know he died for it as well. So Gandhi was a Hindu, but a Hindu whose heart was broad enough, capacious enough to incorporate people of other faiths.

The fourth reason for Gandhi matters is that he was not parochial in religious terms nor in linguistic terms. He was ---- in Gujarati culture. He was one of the greatest modern masters of Gujarati prose. Poets like Narmad, novelists like Govardhan Ram Tripathi, great Gujarati Bhakti saint Nar Singh Mehta shaped his mind. He used to quote their works. Gujarati was in his deep roots- the culture, the language, the folklore and the geography of Gujarat. But just as he had space and love for religions other than his own, he had space and love for languages other than his own. In the argument I began with, between Lohia and Rajaji, Gandhi would have been on the Rajaji's side. In fact, when he was in South Africa, he started a news paper called 'Indian Opinion'. यह साप्ताहिक अख़बार चार भाषाओँ में छपता था- गुजराती, हिंदी, तमिल और अंग्रेज़ी।

He wanted to reach all sections of society. He wanted to reach the Tamils who were the major component of the Indian community in South Africa. Also it had to be printed in English so that the rulers could read it. This is remarkable. I haven't actually sought to confirm this, but 'Indian Opinion', the magazine which Gandhi ran in

South Africa, which started in1903, may have been the first multi-lingual periodical in the world.

The fifth reason that Gandhi matters is that he was both a patriot and an internationalist. He appreciated the richness in heritage of Indian civilization, but knew that in the twentieth century no country could be a frog in the well. It helped if one saw, if India saw itself in the mirror of other countries. If you look at the Gandhi's own influences they were as much Western as Indian. गांधीजी तीन लोगों को गुरु मानते थे- पहले रायचंद भाई जो गुजराती संत और कवि थे। उनसे उनका परिचय बहुत शुरू में हुआ। उनके दुसरे गुरु थे गोपालकृष्ण गोखले, जो भारत के थे लेकिन गुजरात के नहीं। गोखले से उन्होंने ख़ास तौर से जातिगत और स्त्रियों के साथ होने वाले अन्याय के बारे में सीखा। उनके तीसरे गुरु लियो टॉलस्टॉय थे जो भारत के नहीं, बल्कि रूस के थे।

So you can see how, in a sense like B D Pande, who was a Kumaoni, an Uttarakhandi, an Indian and also a citizen of the world. His mind was open to people from all over.That is a particular legacy of Gandhi that we must own, understand, appreciate and follow. You can love your culture, your landscape, your region, your state, but you can still draw upon, be enriched and be influenced by currents coming in from different parts of the country and the world.

So, I have given you so far, five reasons why Gandhi matters. Now I am going to pause and take a break. I will repeat those five reasons and explain to you the significance of these five reasons. First, he invented *Satyagraha.* Second, he loved his country but recognized that it was pervaded or disregarded by inequalities of caste and gender. Third, he loved his religion but recognized that India did not belong to Hindus alone. Fourth, he was a Gujarati, but he understood the importance of linguistic and cultural relations with other parts of India. Fifth, he was a patriot but also an internationalist.

Now I come to second five reasons why Gandhi matters. Had it not been for these five aspects of Gandhi's works, I would not be speaking to you today. Because Gandhi did not use violence, he did not use the method of physically eliminating his opponent, but he advocated dialogue and *satyagraha* with the British. Because of that we became a multi-party democracy, not a single party totalitarian state. If you look at the other ex-colonies of Asia and Africa wherever violence was used to get national liberation, such as in China, or Vietnam, or Zimbabwe- those countries became a one party totalitarian dictatorship. So because Gandhi used non-violence we became a multi-party democracy. Because people like Gandhi and Ambedkar emphasised caste and gender equality, these principles were encoded in our constitution.

In 1950 with the enactment of the Indian Constitution, for the first time in the history of this great civilization, women became equal to men and *dalits* became equal to high castes. Before that these equalities did not exist, we were unequal society under the law.

Because people like Gandhi and Nehru emphasised religious and linguistic freedoms, we did not go the way of Pakistan and Sri Lanka. We didn't defined citizenship on the basis of a single superior language and a single superior religion. Pakistan was created in 1947 because Jinnah said that the Muslims can't live with the Hindus. So he created a separate country. He went to Dhaka, in East Pakistan, in January 1948 and he said you Bengalis have to learn Urdu. The roots of separatism, roots of the movement for creating Bangladesh were in the fact that religion could unite, but language would still divide. Unlike Pakistan, unlike Sri Lanka, unlike Israel, we glory in our religious and linguistic diversity following the example of Gandhi and made it a core principle of our constitution. I am not suggesting that it was Gandhi alone who has made India democratic and plural, or because of whom our constitution goes against centuries of discrimination on the lines of caste and gender and advocates equality of all. There were others, there was Ambedkar, there was Nehru, there was Patel, there was Rajaji, there was Kamladevi Chattopadhyay, there were many others. But he played a central role, and it was his leadership, his moral example and his repeated emphasis on democracy, cultural pluralism and social equality that allowed India to emerge as a democratic and plural nation.

Now I will give you the second five reasons. These five reasons matter not just to India, but to the world.

The sixth reason Gandhi matters is that he was an early environmentalist. Before the environmental movement was born,

before there was talk of climate change, Gandhi recognised that unchecked economic growth and the unchecked greed of the human beings could bring planetary disaster. To prove to the point I am making, that Gandhi anticipated the environmental crisis, I am going to give you one quote only; there are many other. It's from 'Young India', his magazine, in December 1928. Gandhi wrote, 90 years ago:

"God forbid that India should take to industrialisation after the manner of the West. The economic imperialism of a single tiny island kingdom, England, is today keeping the world in chains. If an entire nation of three hundred million took to similar economic exploitation it would strip the world bare like locusts."

India and China by blindly imitating the Western model of economic development are threatening to strip the world bare like locusts.

Gandhi's environmentalism was not just philosophical, it was also practical. It was followed in his everyday life, in his emphasis on recycling, in the works by his associates like J C Kumarappa on reviving common property resource management, water conservation and so on. So the sixth reason for Gandhi matters is that he had anticipated the environmental crisis of the 21st century and his warnings in this regard are still extremely relevant.

The seventh reason that Gandhi matters was his ability to grow and evolve as his career progressed. If he confronted with the new evidence, he changed his old views. For example take his views on caste. When Gandhi came back to India in 1915, he opposed to the untouchability, but defended the *varnashram dharma.* उन्होंने कहा ठीक है, छूत-अछूत की बात नहीं होनी चाहिए। लेकिन लोग अपनी-अपनी जाति के लोगों के साथ ही खाना खायेंगे और शादी भी वहीँ करेंगे, इससे वे बिल्कुल सहमत नहीं थे।

But he changed his views. First he changed his views under the influence of the great Kerala social reformer Narain Guru who was an advocate of the temple entry and the Vaikom satyagraha of 1924 by which dalits got entry into the temples of Kerala for the first time

(it took another 40 years for the dalits to get entry in temple of Badrinath in 1960s). Gandhiji went to Vaikom, was very impressed and embraced inter-dining and inter-mixing.

There, of course, came the great B R Ambedkar who challenged his ideas even more forcefully, but in late 1930s Gandhi had abandoned the ideas of *varnashram dharma* and in his Ashram he was himself presiding over the marriages between people of different castes. And once people of different castes marrying, that's the end of the caste system, which is what Ambedkar wrote, was the best way to un-highlight the caste. Gandhi changed his views. First, he was the British noble. He thought orthodoxy will not support me if I am too direct in my criticism of the caste system. Likewise, if you look at his views on race, when Gandhi went to South Africa in 1890s he was absolutely convinced that Africans are inferior to Indians, but the longer he lived there the longer he recognised the shared and common humanity of everyone and after he comes back to India, in 1920s and 1930s, Gandhi is in close correspondence with the leaders of the African-American movement and he had absolutely shared any taste of racial prejudice that he had. If you look at his ideas on

modern medicines, in 'Hind Swaraj' in 1909 Gandhiji blindly rejects all modern medicines. He said that doctors and lawyers are all crooks and he fully relied in nature care and indigenous medicines. But when he comes back in 1919, he is suffering terribly from piles and it is the modern surgeon called Dr Dalal who cures him. In 1924 when he was in jail, he had appendicitis and he would have died and again this is Col Maddock who saves him. So he recognises that modern medicine also has its uses. Of course, he still thinks that indigenous medicines, nature care can provide a counter point, but the greatness of Gandhi was that when he confronted in with new evidences he changed his mind. So rare people in power! They think that they know everything and no one can teach them anything. So the seventh reason that Gandhi matters was his ability to grow, evolve when confronted with new evidence or confronted with severe criticism.

The eighth reason Gandhi matters is that he had a rare ability of making leaders out of followers. He identified talent, nurtured and developed it and then set it free to grow further on its own. Many of the disciples who were with him in the freedom struggle went on to become great figures on their own rite contributing to India's growth, development and progress after Gandhiji had died. Think of Nehru, Patel, Kamla Devi Chattopadhyaya, Lohia, Jay Prakash Narayan, Rajaji, Kumarappa, Zakir Hussain and other great figures of independent India, people who contributed to our cultural life, our social life, to emancipation of women, to revival of crafts, to the deepening of Indian democracy, to abolishing caste discriminations. All these great people who united India were groomed by Gandhi and then they became leaders on their own right. This was a very rare ability of Gandhi to make leaders out of followers. जो आपके साथ काम करने आते हैं वे हर वक़्त भक्त ही न रहें। उन्हें स्वतंत्र बनाओ और वे अपना काम ख़ुद आगे ले जायें। If you compare Gandhiji in this regard to three most influential Prime Ministers of independent India: Nehru, Indira Gandhi and our current Prime Minister, Narendra Modi, in all three

cases the followers remain the followers. Nehru didn't generate a line of leadership to follow him, Indira Gandhi did not and Narendra Modi also, by current indications, will not. So, across political line, two may have been from the Congress and one may have been from the BJP. Forget about the politics; look at how many of our companies function. You know many of our famous CEOs who run very successful company, never know when to retire. Look at some of our sports team functionaries. Look at our cricket team captains and very remarkable people whom I have respected, someone in the social field, the great Verghese Kurien who built one of the most successful cooperative models of India. He too thought he was indispensible. There are some exceptions in social- work field. There are people like Ilea Bhatt in SEVA, Sara Behan in Kumauni, Chandi Prasad ji in Gopeshwar, people who realised that you are not immortal, that you have to find ways of nurturing a line of succession and you have to know how to make leaders out of followers. It was Gandhi's rare greatness. To identify his talent look at his greatest followers. Nehru was drifting through life, didn't know what to do, he was not a successful lawyer. Patel was a successful lawyer, so successful that he would work for 3 days in a week and the other 3 days he would play brij in the Gujarat Club. Rajaji, Bose, Azad from where he got all these people? He found, nurtured and nourished them, so that they could emerge as independent leaders in their own right. So that is eighth reason why Gandhi matters and this is beyond politics. In any sphere of public life people who are in authority or power find it very difficult to recognise that their authority and power that comes in their post is temporary and the institution or the country must carry on even after they have gone and the ways must be found of nurturing a line of succession.

The ninth reason that Gandhi matters, again very rare in contemporary life, was his willingness to see his opponent's point of view coupled with his willingness to reach out to them and seek a

middle ground. Gandhi had no enemies. If you look in the second volume of my Gandhi's biography 'Gandhi: the years that changed the world', I have described how he debated with Ambedkar for twenty years and with Jinnah for thirty years. He was willing to carry out a dialogue to find a way in which they could work together. Sometimes he failed, with Jinnah he failed, with Ambedkar he did not fail. Ambedkar despite twenty years of opposing to Congress party, and to Gandhi personally was made Law Minister in free India's first government and head of the committee which drafted Indian constitution, which may be inconceivable in political culture where if you disagreed with a person on a matter of policy that person became your enemy absolutely. That was not the political culture that Gandhi sought to cultivate. So I have given you nine reasons that Gandhi matters

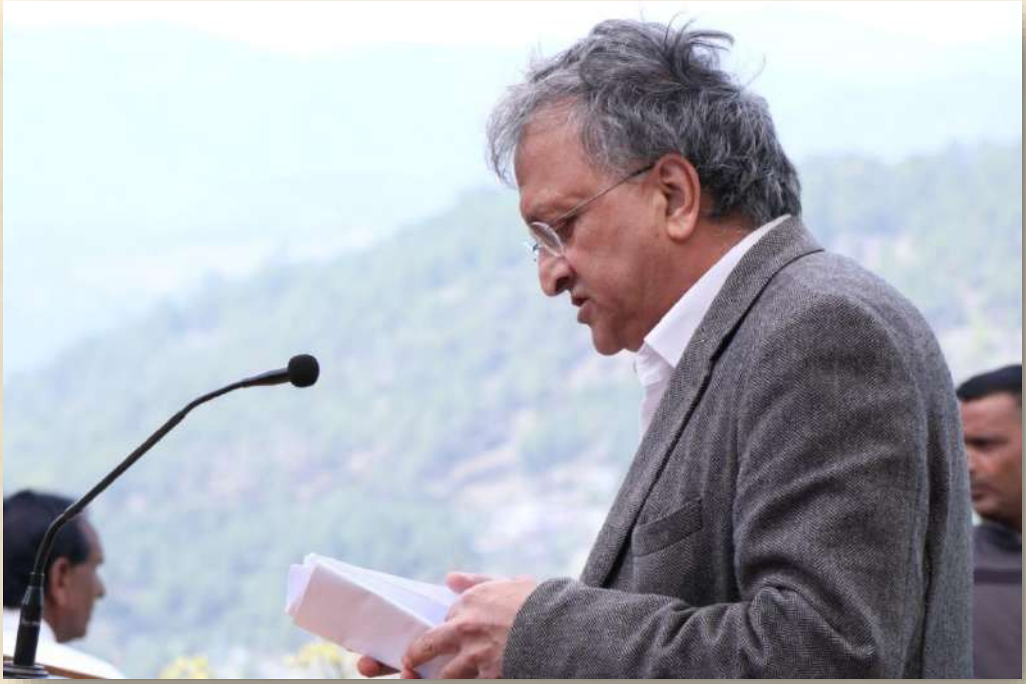

Now I will give you the tenth. This is the transparency in his personal and political life. Anyone could walk in to his Ashram and could debate with him. You could just walk in to his Ashram and start a conversation with him. You could write him a letter and he would likely reply you if the letter had some merit. Indeed it

happened that anyone could walk up to him and murdered him. What a contrast this is with the security obsessed drives of our political leaders today!

I could end my talk and we could hopefully have a discussion with the lovely story that I read in a very nice book called **'Balraj: My Brother'**. It is the story of friendship between two brothers, the writer Bhisham Sahni and his elder brother Balraj Sahni. Balraj Sahani was an idealistic young man growing up in Punjab in the 1930s. Like many intelligent idealistic young people he went to Sevagram Ashram to meet Gandhi. वहां वह एक-दो हफ्ता तो रहे और अपने छोटे भाई को चिट्ठियाँ लिखते थेA पहली चिट्ठी में उन्होंने लिखा कि यहाँ बहुत मज़ा आ रहा हैA यहाँ बहुत से अच्छे लोग हैं, जो देश के लिए बहुत अच्छा काम कर रहे हैंA उनसे बातचीत हो सकती हैA लेकिन परेशानी एक ही है कि मैं आश्रम में सिगरेट नहीं पी सकता हूँA इसलिए रात को मैं दीवार से कूदकर बाहर जाता हूँ और सिगरेट पीकर वापस आता हूँA

So that was one letter. But there was another letter, which is much nicer, where he says, **"the greatness of Gandhiji is that**

anyone can walk in to his Ashram." Balraj Says, "when I was in college in Lahore, you could not go into your Principal's office and talk to him. But Gandhi ji had set aside a time. During his morning walk and his evening walk anyone could come up to him from any part of India and ask him a question." In a letter to his brother he describes, "Gandhi was going on a walk from a village to next village and if someone has come he could walk with him for that hour and ask him whatever question he wants and will get an answer. The only limit is that you cannot monopolise Gandhi's time. " Balraj Sahni says, "If you go and start a conversation with Gandhi ji on his walk and ask a second question and a third question so that the people behind you in the line do not have a chance, Gandhi ji looks back, and as Gandhi ji glance backward a very tall, very dark and very smelling Indian disciple of Gandhi ji will come right in the front, will take the stage which is yours and you will feel so disgusted by the smell that you will move aside and next person would come. So anyone in India could argue and debate with Gandhi, but could not monopolise his time." I will read one more quote in the end because this keeps the sense of how different Gandhi was from other political figures, a college Principle, a Judge of the Supreme Court, a General etc. The English Quaker Reg Renolds, who had known Gandhi for a period of 25 years, once wrote: **"Gandhiji had no private life as we Westerners understand the expression."** To Rag Refold's observation, I did my own interpretation which I will read out to you: "God knows what we would think of other celebrated figures, whether in politics or business or sports, or science or the arts, if we were so directly exposed to the intimacies of their life and their thoughts. **We have so much to criticise about Gandhi because he told us everything himself.**"

Beyond Satyagraha, interfaith harmony, environmental responsibility, the ending of the British Empire and delegitimizing of the untouchability, beyond all these great achievements, the practice of at the large the quest for truth, may in fact, be Gandhi's most remarkable achievement.

***